जीवन-निर्माण

[उत्तर-प्रदेश शिक्षा बोर्ड द्वारा हाई स्कूल कक्षाओं के लिए हिन्दी के द्वितीय प्रश्नपत्र की स्वीकृत सप्लीमेन्ट्री पुस्तक]

लेखक

फूलचन्द्र जैन 'सारंग', एम० ए०

प्राध्यापक

महावीर दिगम्बर जैन कालेज,

आगरा

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–३

हमारी प्राण-शक्ति विलुप्त हुई तो जा रही है। आज हमारे जीवन में रस और उल्लास नहीं है, जीवन-गति में स्फूर्ति और उमंग नहीं है। जीने का हमें मोह है, इसीलिए हम जी रहे हैं, परन्तु सच्चे अर्थों में जीने का आदर्श आज हमारे ज्ञान की परिधि से बाहर की बात बन गया है। जीवन-कला से हम अनभिज्ञ हैं और उसी का परिणाम है कि जिस प्रकार के जीवन की रचना हमारे हाथों हो रही है, उसका कुरूप और अशोभनीय रूप हमारे सामने है। इसका कारण यह है कि जीवन के सर्वाङ्गीण विकास और व्यक्तित्व-निर्माण के लिए हमारे पास स्वस्थ दृष्टिकोणों और मान्यताओं की भावभूमि नहीं है। जीवन के क्षेत्र को, अवदात आदर्शों के अमृत रस से सींचने के लिए, हमारे पास जीवन-कला की स्वस्थ और स्थायी सामग्री नहीं है।

ऐसी स्थिति अक्षम्य और असहनीय है। आज तो आवश्यकता इस बात की है कि हम लोग अपने आस-पास के निराशा और असफलता से भरे तथा जीवन के अशोभन तत्त्वों से बने वातावरण से ऊपर उठकर अपने जीवन का विकास सही दिशा में करें। जीवन को ऊँचा उठाने के लिए जिन गुणों की अपेक्षा होती है, उन्हें अपना कर स्वनिर्माण करें। यह तभी संभव है जबकि हम जीवन की श्रेष्ठ शक्तियों, श्रेष्ठ निष्ठाओं का श्रेष्ठतम उपयोग, जीवन-निर्माण के लिये कर सकें। हमारे पास ऐसे आदर्श, ऐसा दृष्टिकोण और जीवन कला के ऐसे स्वस्थ और स्थायी उपादान हों जिससे कि हम अपने जीवन को महानता की उच्च भूमि पर प्रतिष्ठित कर सकें। हमें ऐसे ज्ञान की अपेक्षा है जो हमें सच्चे अर्थों में जीना सिखा सके।

प्रस्तुत पुस्तक का प्रणयन इसी उद्देश्य को लेकर किया गया है। इसमें जीवन-निर्माण के लिए सभी आवश्यक तत्त्वों पर विविधता और व्यापकता के साथ सुरुचिपूर्ण और स्वस्थ विचार-सामग्री प्रस्तुत की गई है। पुस्तक प्रधानतः राष्ट्र के उन किशोर छात्रों के विमल मानस के जीवन में स्वस्थ आदर्शों का उद्रेक करने के लिए लिखी गई है, जो कि विद्याध्ययन के पश्चात् जीवन के

क्षेत्र में प्रवेश करेंगे। फलतः जीवन-पथ पर कदम रखने से पूर्व वे जीवन-कला के स्वरूप को भली-भाँति हृदयंगम कर सकें, पुस्तक इसी ध्येय को लेकर चली है। आशा है यह पुस्तक नौनिहालों और भावी कर्णधारों के जीवन में प्रवेश कर उनके जीवन के स्वस्थ निर्माण की सही दिशा देगा।

—फूलचन्द्र जैन 'सारंग

विषय-सूची

जीवन का उद्देश्य

असतो मा सद्गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्मा अमृतं गमय
असत् से सत् की ओर ले चल
अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चल
मृत्यु से अमृत की ओर ले चल

सुथरा रखने के लिए आगे बढ़ें, प्रगति करें, ऊँचे उठें, यही आपके महान् जीवन का सच्चा रहस्य है।

पर आपके जीवन की महानता इस बात पर टिकी है कि आपका उद्देश्य कितना महान् है। आप प्रगति कर रहे हैं यह अच्छी बात है, आप आगे बढ़ रहे हैं यह गौरव की बात है, आप ऊँचे भी उठ रहे हैं यह और भी सुन्दर है, पर तनिक रुकिए और विचारिए तो सही, कि आप कहीं गलत राह पर तो नहीं हैं। प्रगति की राह पर आपने जो कदम रखा है, वह गलत दिशा में तो नहीं है। जिस उद्देश्य को लेकर आप चले हैं, वह जीवन के सच्चे आदर्श से अछूता तो नहीं है।

इन प्रश्नों के उत्तर में आपकी ओर से अनेक बातें सुनने को मिल सकती हैं। आप कहेंगे, हमने अपना उद्देश्य पहचान लिया है। हमारी महत्वाकांक्षाएँ बढ़ी-चढ़ी हैं। हमारे आदर्श बहुत ऊँचे हैं। हम डाक्टर बनेंगे, इंजीनियर बनेंगे, अध्यापक बनेंगे। बहुत-सा धन कमाकर परिवार का भरण-पोषण करेंगे। कोठियाँ बनवायेंगे, मोटरें खरीदेंगे, ठाठ से रहेंगे। शान से जिन्दगी बितायेंगे। जीवन के ये सपने आपको बड़े मीठे लगते हैं। ये महत्वाकांक्षाएँ आपको गुद-गुदाती हैं। इन आदर्शों के ताने-बाने से आप अपने जीवन के सुखमय भविष्य को बुनने का प्रयत्न करते हैं। इसी को आप महानता कहते हैं, जीवन की सच्ची प्रगति बतलाते हैं। पर आप मानें या न मानें, सचाई वास्तव में यह है कि आप बहुत बड़ी भूल कर रहे हैं। जीवन का जो रूप आपकी आँखों में बसा है वह पूर्ण नहीं अपूर्ण है, सुन्दर नहीं असुन्दर है। आपकी महत्वाकांक्षाएँ बड़ी दुर्बल और कमजोर हैं। आपके आदर्श बड़े संकुचित और सीमित दायरे में बन्द हैं। जीवन के सच्चे मर्म को आपने पहचाना नहीं, इसीलिए आप जिसे प्रगति समझते है, ऊँचे उठने की बात कहते हैं, वही आपके जीवन की कम-जोरी है। आप आगे न बढ़ कर पीछे लौट रहे हैं, सत् से असत् की

ओर, प्रकाश से अन्धकार की ओर, अमृत से मृत्यु की ओर। जीवन की महानता को आप खो रहे हैं, क्योंकि आपके उद्देश्य महान् नहीं हैं।

आप जिन उद्देश्यों की बात करते हैं, उनसे साफ प्रगट होता है कि आप अपने लिए जीना चाहते हैं। दूसरों की परवाह न कर आप अपने स्वार्थों को पूरा करने में ही जीवन की सच्ची सार्थकता समझ रहे हैं। आप समझ बैठे हैं कि हमारा जन्म संसार में आनन्द प्राप्त करने के लिए हुआ है। आराम से जीवन बिताना ही जीवन का परम लक्ष्य है। धन कमाना और उसका उपभोग करना ही जीवन का उद्देश्य है। इस प्रकार आपने जीवन के रूप को बिगाड़ डाला है। आप भूल गए हैं, इस बात को कि केवल पेट भरना पशुओं का काम है, मनुष्य का नहीं। इसलिए अपनी भूल को सुधारो और गीता के इस कथन पर मनन करो कि "जो अपनी इन्द्रियों के सुख में लगा रहता है, उसका जीना निकम्मा और पापपूर्ण है।"

इसलिए ऐसी निकम्मी और पाप भरी जिन्दगी को छोड़कर ऐसे

करना चाहिए, यही जीवन है।" अब आप विचार करें कि क्या आपका जीवन ऐसा ही है। जीवन के इस वास्तविक सौन्दर्य और आनन्द के लिए क्या आप अहर्निश संघर्ष कर रहे हैं? क्या आपका जीवन सच्चे लक्ष्य की ओर अग्रसर होते हुए आनन्द, उत्साह, उमङ्ग, और स्फूर्ति से भरा हुआ है? क्या आप जब प्रातःकाल उठते हैं, तब पवित्र विचारों का प्रकाश आपके हृदय में बाल-अरुण की रश्मियों की तरह जगमाता है और जब आप सोते हैं, तब क्या आपका मन जीवन की सच्ची शान्ति से भरा हुआ रहता है? यदि नहीं तो आप अभी लक्ष्य-विहीन हैं। जीवन के महान् उद्देश्य से बहुत दूर हैं।

जीवन के महान् उद्देश्य के निकट पहुँचना चाहते हो तो सत्य, प्रकाश और अमृत के साधन के पथ पर जीवन-रथ के पहियों को गति दो। प्रतिज्ञा करो कि प्रतिदिन सचाई और ईमानदारी के साथ पवित्र तथा उपकारी जीवन बिताने में कोई कसर नहीं उठा रखेंगे। निश्चय करो कि उन लोगों की तरह जीवन व्यतीत करेंगे जो मर गए हैं, मगर जिनके गुण नहीं मरे। उन लोगों की तरह जीवित रहने से कोई फायदा नहीं जो जीवित रहते हुए भी मृतक के समान हैं। विश्वास रखो कि जिस तरह जब से दुनिया शुरू हुई है, कोई सच्चा काम फिजूल नहीं गया, इसी तरह जब से दुनिया शुरू हुई है, कोई सच्चा जीवन कभी असफल नहीं हुआ।

इंजीनियर और डाक्टर बनकर, वकील और अध्यापक बनकर जीवन के जिस क्षेत्र में भी कदम रखो, अपने उद्देश्य को मत भूलो। अपने आदर्शों को मत छोड़ो। आशा और आत्म-विश्वास के साथ ऊँचे उठो। चरित्र के दुर्भेद्य कवच को स्वस्थ शरीर पर धारण करो। स्वावलम्बन, साहस और परिश्रम के अजेय हथियार लेकर जीवन-रण में कूद पड़ो और अपने इस मनुज शरीर को 'बहुजन हिताय' और 'बहुजन सुखाय' के लिए समर्पित कर दो। विजय तुम्हारी निश्चित

है। सफलता तुम्हारे पग चूमेगी। असत् से सत् की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमृत की ओर बढ़ता हुआ तुम्हारा जीवन महान् उद्देश्य की सिद्धि का अधिकारी बनेगा।

इसलिए जीवन की सफलता के सोपान पर चढ़ने वाले हे साधक ! तुझे तेरा लक्ष्य मिल गया है, उठ और आगे बढ़।

अपने को पहचानो

इस महत्वपूर्ण सत्य को कभी मत भूलो कि कोई तब तक सचमुच महान् नहीं हो सकता, जब तक कि वह अपने आपको नहीं पहचान ले। जिसने अपने आपको देखा और पहचान लिया है, वही बड़ी शीघ्रता से अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। अपने को जानना सब सिद्धियों में बड़ी सिद्धि है। लाखों में से एक होता है जो अपने को जानने का प्रयत्न करता है और उन यत्न करने वालों में भी विरला ही होता है जो वास्तव में अपने को पहचान पाता है। बाइबिल में कहा गया है—Behold the kingdom of Good is within you, You are the temple of God, "दुनिया का सम्पूर्ण साम्राज्य तुम में है–उसे जानो, तुम्हारा हृदय ही ईश्वर का मन्दिर है।" इसलिए सच्चा ज्ञानी वही है जो अपने आपको जानने की कोशिश करता है। अज्ञानी लोग ही दूसरों को जानने की कोशिश करते हैं।

तब फिर हम अपने आपको कैसे पहचानें? कैसे जाने कि हम क्या हैं? विज्ञान ने मानव शरीर के रहस्य को जानने के लिए तो अनेक साधन सुलभ कर दिए हैं, पर मन का रहस्य, हृदय का ज्ञान—इसे पहचानने के लिए हमारे पास कोई साधन नहीं है। इसलिए थेल्स का कहना है कि "जीवन में सबसे मुश्किल बात अपने आपको जानना है।"

और प्रकाश, सत् और असत्, मृत्यु और अमृत छिपा रहता है। फिर भी कुछ मनुष्य महान् बन जाते हैं, कुछ जहाँ हैं वहीं खड़े रहते हैं और शेष जहाँ थे वहाँ से नीचे गिर जाते हैं। मानव जीवन का यह कैसा अद्भुत रहस्य है ? पर ध्यान से सोचो तो यह रहस्य बिलकुल स्पष्ट है। जो महान् बन गये हैं, उन्होंने निश्चय ही अपने अन्दर छिपी हुई शक्तियों और प्रतिभा को पहचाना है। उस पर पड़े हुए अन्धकार के पर्दे को उतार फेंका है। अपनी इस शक्ति और प्रतिभा का उन्होंने समुचित विकास किया है। वे अन्धकार से प्रकाश की ओर बढ़े, असत् से सत् की ओर बढ़े, मृत्यु से अमृत की ओर बढ़े। उनकी प्रगति में उनके हृदय की जो दुर्बलताएँ बाधक बनीं, जो प्रवृत्तियाँ उन्हें विचलित करने आईं, उनका उन्होंने दृढ़तापूर्वक मुकाबला किया। बहादुरी के साथ उन्होंने उन्हें कुचल दिया। अपने को पहचानकर, अपनी शक्ति और दुर्बलता से परिचित बनकर वे आगे ही बढ़ते गये और एक दिन उन्होंने देखा कि वे सफल और यशस्वी जीवन के द्वार पर खड़े हैं।

महात्मा गांधी का उदाहरण तुम्हारे सामने है। उनके साधारण से बचपन को देखो और उसकी तुलना उनके बाद के महान् जीवन से करो। बचपन में वे कितने शर्मीले थे। माँस खाने की आदत के कारण उन्हें चोरी भी करनी पड़ी, पर इसके साथ ही साथ उनमें सत्य के प्रति कितना प्रबल आग्रह था। मास्टर साहब के इशारा करने प भी उन्होंने नकल करके अपना गलत शब्द नहीं सुधारा था। इंगलैण जाने से पहले माँ ने जो प्रतिज्ञाएँ करवाईं, उनका उन्होंने पूरी तो से पालन किया था। इस प्रकार गांधी जी में जहाँ अच्छाइयाँ थीं, वह बुराइयाँ भी थीं। पर उनके जीवन का ज्यों-ज्यों विकास होता गय बुराइयाँ घटती गयीं और अच्छाइयाँ बढ़ती गयीं। इसका मतलब ह कि उन्होंने अपने गुणों और दोषों को सचाई के साथ परख लिया थ अन्धकार और प्रकाश के भेद को उन्होंने पहचान लिया था। इसीलि उनके जीवन में सद्गुणों का, पवित्र भावनाओं का धीरे-धीरे विका

ऐसी गलती कभी नहीं होगी। यह बात इसलिए आवश्यक है कि हम प्रतिदिन के व्यवहार ही हमारे जीवन के सच्चे स्वरूप का प्रतिनिधि करते हैं। मनुष्य की सच्ची परख, उसके ज्ञान, विचार और पांडित्य नहीं होती, वरन् उसके व्यवहार से होती है। हम वही हैं जो हम कर हैं, न कि वह जो हम दूसरों से सुनते हैं। इसलिए व्यवहार को छोटी छोटी बातों से हम अपने को परख सकते हैं।

अपने को पहचानने के लिए, अपनी बुरी और अच्छी प्रवृत्तियों से परिचित बनने के लिए आप चाहें तो एक और उपाय काम में ला सकते हैं। आप एक डायरी बनाइए और उसका नाम रखिए, 'जीवन-डायरी'—अपनी इस जीवन-डायरी में प्रतिदिन किए जाने वाले कार्यों का विवरण रखिए। शाम को सोने से पूर्व हिसाब लगाइए कि आपकी कौनसी प्रवृत्तियाँ अधिक गतिशील हैं। आपने जो कार्य किए हैं उनमें अच्छाइयाँ अधिक हैं या बुराइयाँ। इस प्रकार आप अपने स्वभाव और प्रवृत्ति के सच्चे स्वरूप को पहचान लेंगे। यदि आपको जीवन-डायरी का हर अगला पृष्ठ आपकी बुराइयों की अपेक्षा आपके गुणों का दिग्दर्शन कराता है, यदि जीवन-डायरी में अङ्कित आपके दैनिक जीवन में उत्तरोत्तर बुराइयाँ घटती जाती हैं और अच्छाइयों से भरे काम बढ़ते जाते हैं, तो समझ लीजिये आपके जीवन का महान् निर्माण हो रहा है। गांधी, ईसा, बुद्ध, महावीर जैसी विश्व की महान् विभूतियों के समान आप भी महान् बनते जा रहे हैं।

अपने को पहचानने की यही कला है और जीवन की महानता का यही रहस्य है। नित्य प्रति के अभ्यास से हम इस आत्म-निरीक्षण की शक्ति को प्राप्त कर सकते हैं। पर बात यथार्थ में ऐसी नहीं होती। महान् बनने की लालसा तो हममें रहती है पर आत्म-निरीक्षण की ओर हम उदासीन बन जाते हैं। यह कैसी मूर्खता भरी बात है कि दूसरे के गुण-दोष विवेचन में मनुष्य जितना समय व्यय करता है, उसका एक प्रतिशत भी अपने आत्म-निरीक्षण में नहीं लगाता। जितना आनन्द हमें दूसरों की बुराई ढूंढ़ने में मिलता है, ठीक उतना

लगे रहते हैं और प्रशंसा की भूख मिटाने के लिए हम अपनी निन्दा नहीं सहन कर सकते। उस प्रकार हमारे और अन्य लोगों के जो व्यवहार सामने आते हैं, लोगों की जुबान पर रहते हैं, वे सब झूठे होते हैं। उनमें सचाई नहीं होती। पिछले जमाने में जिस प्रकार राजा लोग गुप्त रूप से भेष बदल कर जन समाज की दशा का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करते थे, उसी प्रकार गुप्त रूप से अपने व्यक्तिगत जीवन की चर्चा सुन कर हमें भी अपने गुण-दोषों की परख करनी चाहिए। पर यह चर्चा जैसे कि पहले बतलाया जा चुका है, पक्षपात-पूर्ण और सचाई से दूर होती है। वास्तविक सचाई तो मनुष्य के हृदय में छिपी रहती है। अपना गुप्तचर आप बनकर जब हम अपने अंतःकरण की छान-बीन करेंगे, दूसरों के गुण-दोषों के विवेचन में रस लेने की अपेक्षा अपने दोषों पर मनन करेंगे तभी हम अपने सच्चे स्वरूप को पहचान सकेंगे। इसीलिए दूसरों की ओर देखने से पहले अपनी ओर देखिए, क्योंकि अपने को पहचानने के बाद ही संसार को पहचाना जा सकता है।

आत्म-निरीक्षण के दृष्टिकोण को लेकर चलें तो संसार में चार तरह के मनुष्य मिलेंगे। बर्टन के शब्दों में उसका वर्गीकरण इस प्रकार होना चाहिए—'एक जो कुछ नहीं जानते और नहीं जानते कि वे कुछ नहीं जानते, वे मूर्ख हैं उन्हें अपने से दूर रखो, 'दूसरे जो कुछ नहीं जानते और जानते हैं कि वे कुछ नहीं जानते, वे सीधे-सादे हैं, उन्हें सिखाओ, 'तीसरे जो जानते हैं और नहीं जानते कि वे जानते हैं, वे सोए हुए हैं उन्हें जगाओ, 'चौथे जो जानते हैं और जानते हैं कि वे जानते हैं, वे बुद्धिमान हैं उनके पीछे चलो।'

सोचिए और विचारिए कि इन चार प्रकार के मनुष्यों में आपका स्थान कौन सा है?

आत्म-विश्वास

महान् कार्य करने के लिए सबसे आवश्यक चीज है आत्म-विश्वास का होना। यदि आपको अपने ऊपर विश्वास नहीं है, अपनी शक्ति पर विश्वास नहीं है तो आप महान् कार्य कैसे कर सकते हैं? आपका जीवन एक ललकार है, उसकी चुनौती आपको स्वीकार करनी है। आपका जीवन एक संग्राम-स्थल है, जिसमें आपको विजयी बनना है। महान् जीवन-रथ के पहिए फूलों से भरे नन्दन वन में से नहीं गुजरते, कंटकों से भरे बीहड़ पथ पर चलते हैं। आपको ऐसे ही महान् जीवन-रथ का सारथी बनकर अपनी यात्रा को पूरा करना है। पर जब तक आपके पास आत्म-विश्वास का दुर्जेय शस्त्र नहीं है, न तो आप जीवन की ललकार का सामना कर सकते हैं, न जीवन-संग्राम में विजय प्राप्त कर सकते हैं और न महान् जीवन के सोपानों पर चढ़ सकते हैं। जीवन-पथ पर आप आगे बढ़ रहे हैं, दुख और निराशा की काली घटाएँ आपके मार्ग पर छा रही हैं। आपत्तियों का अन्धकार मुँह फैलाए आपकी प्रगति को निगलने के लिए बढ़ा चला आ रहा है, लेकिन आपके हृदय में आत्म-विश्वास की दृढ़ ज्योति जगमगा रही है तो इस दुःख, निराशा और आपत्तियों का कुहरा उसी प्रकार फट जायगा जैसे सूरज की किरणों के निकलते ही अन्धकार भाग जाता है। कोई भी शक्ति आपको अपने मार्ग से विचलित नहीं कर सकती। आत्म-विश्वास की शक्ति आपके पास है तो सफलता आपकी चेरी है।

याद रखो आत्म-विश्वास ही जीवन का प्रकाश है। इसे खोकर आप अपना लक्ष्य नहीं पा सकते। आत्म-विश्वास ही अमृत है, इसे बिना पीये आप जी नहीं सकते।

आत्म-विश्वास की जगमगाती दीपशिखा को देखना हो तो महाराणा प्रताप के जीवन को देखो। स्वतन्त्रता का दीवाना वह प्रताप चित्तौड़ के राजवैभव को छोड़कर जङ्गलों की खाक छानता फिरा। कठोर चट्टानों पर सोया और घास की रोटियों पर जिया। फिर भी क्या अकबर जैसा प्रबल शत्रु उसे झुका सका? इतनी मुसीबतों को सहने के बावजूद भी उसने अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं की। अडिग हिमालय की भाँति वह सदैव उन्नत और अजेय बना रहा। महाराणा प्रताप की इस महानता का क्या कारण था, क्या आप बतला सकेंगे? सीधी-सादी बात है उनके आत्म-विश्वास ने ही उन्हें उतनी शक्ति दी थी, जिससे वे अकबर जैसे शत्रु के दाँत खट्टे कर सके। अहर्निश मुसीबतों और कठिनाइयों के तूफानों से जूझ सके। आत्म-विश्वास की ज्योति निरन्तर उनके हृदय में जलती रही। उसी के प्रकाश में वे आगे बढ़ते रहे, अपने लक्ष्य की ओर।

भारत की स्वतन्त्रता किस की साधना से हमें मिली? महात्मा गांधी के त्याग और तप के बल पर। आप जानते हैं महात्मा गांधी के इस अद्भुत और अपूर्व कार्य का सच्चा रहस्य क्या था? शायद नहीं, तो सुनिए। महात्मा गांधी को अपने ऊपर, अपने सिद्धान्तों पर, अपने मार्ग पर पूर्ण विश्वास था। जिस सत्य और अहिंसा के मार्ग को उन्होंने अपनाया था, उससे तिलमात्र भी वे इधर-उधर नहीं हटे। जब शासन के भीषण दमन चक्र के कारण हिंसा का बाजार गर्म हो उठता था, हजारों नर-पुंगवों के सिर फूल की तरह कट कर गिरने लगते थे, तब भी महात्मा गांधी की आस्था सत्य और अहिंसा से नहीं डिगी। बस उनका यह आत्म-विश्वास ही स्वतन्त्रता के प्रकाश को गुलाम भारत की धरती पर खींच लाया।

शत्रु अटक के उस पार था और पंजाव केसरी रणजीतसिंह
सेना इस पार। अटक में भीषण वाढ़ आई हुई थी, पर शत्रु पर आ
मण करने के लिए अटक पार करना जरूरी था। सैनिक हिचकिच
पर महाराणा रणजीतसिंह का घोड़ा नदी में कूद पड़ा और देख
देखते सभी सैनिक अटक के उस पार थे, शत्रु की छाती पर। स
ही तो है—

सकल भूमि गोपाल की
यामें अटक कहा ?
जाके मन में अटक है
सोई अटक रहा।

यह कठिनाई महान् नेपोलियन के सामने भी उपस्थित हुई थी
जव आल्पस पहाड़ ने उसका मार्ग रोका था, उस समय उस वीरात्म
के मुँह से जो शव्द निकले थे, वे शव्द आज भी हमारे पथ-प्रदर्शक हैं
आल्पस को देखकर नेपोलियन ने दृढ़ आत्म-विश्वास भरे शव्दों में कहा,
"यदि आल्पस हमारा मार्ग रोकता है तो आल्पस नहीं रहेगा।" और
सचमुच यही हुआ। नेपोलियन की सेनाएँ आल्पस को काटकर निकल
गईं।

नील नदी के युद्ध का महान् सेनापति नेलसन, जिसने नेपोलियन
जैसे वीर को हराया, उसकी महान् विजय का कारण था उसका
प्रवल आत्म-विश्वास। युद्ध आरम्भ होने से पूर्व नेलसन ने सेना-नायकों
के सामने युद्ध का नक्शा रखा। वेरी वोल उठा, "यदि हमारी विजय
नहीं हुई तो हम अपने देश की जनता को क्या उत्तर देंगे।" नेलसन ने
आवेश भरे स्वर में कहा "विजय, विजय हमारी निश्चित है, 'यदि' के
लिए उसमें कोई स्थान नहीं।" संसार ने देखा नेलसन का आत्म-
विश्वास उस महान् विजय का रूप धारण कर आया।

कोलम्वस तो साधारण-सा मनुष्य था, पर उसका अद्भुत आत्म-
विश्वास तो देखो। भारत की खोज करने निकला और अमेरिका
का पता लगा लाया। भारत की खोज के लिए जव उसने अपने देश

हमारे और आपके आँखों देखे समाज में ऐसे बहुत से व्यक्ति हैं जो योग्य हैं, जिनमें शक्ति है और प्रतिभा है, पर एक आत्म-विश्वास नहीं। इस एक आत्म-विश्वास के विना, जैसे जल से रहित भूमि पर खेती नहीं की जा सकती, उसी प्रकार वे अपने जीवन में उन्नति नहीं कर पाते। वस वे अपने जीवन को पंगु बना डालते हैं। जब हमें अपने पर विश्वास ही नहीं, अपनी शक्ति पर भरोसा ही नहीं तो हम अपनी छिपी हुई शक्तियों का निर्भयता-पूर्वक विकास ही कैसे कर सकेंगे। हमारे अन्दर छिपी हुई हीन-भावना, हमारी दुर्बलता हमें ऐसा करने ही नहीं देगी। इस प्रकार हमारी कार्य शक्ति, प्रकृतिदत्त प्रतिभा सोई हुई पड़ी रहेगी। पर हमारे निकम्मे हाथ उसे जगा नहीं सकेंगे। एक अंग्रेजी लेखक वोवी ने ठीक ही कहा है कि, "आत्म-विश्वास की कमी ही हमारी वहुत-सी असफलताओं का कारण होती है। शक्ति के विश्वास में ही शक्ति है। वे सबसे कमजोर हैं, चाहे वे कितने ही शक्तिशाली क्यों न हों, जिन्हें अपने आप पर तथा अपनी शक्तियों पर विश्वास नहीं है।"

वास्तव में आत्म-विश्वास से रहित जीवन मृत्यु के समान है। हृदय की हीन भावना से बढ़कर हमारा कोई शत्रु नहीं है। यह वह विष है, जो हमारी जीवन-शक्ति को सुखा डालता है। यह वह आग है, जो हमारी जीवन-शक्ति को जला डालती है। हम अपनी इस दुर्बलता को निकाल फेंकें; इस हीन-भावना का दमन करें, इसी में हमारा भला है, अन्यथा हम अपने उद्देश्य से भटक जायेंगे। तूफान के बीच जो महत्त्व एक नाविक के लिए दिग्दर्शक यन्त्र का होता है, वही महत्त्व जीवन-पथ पर महानता की ओर बढ़ने वाले जीवन-साधक के लिये आत्म-विश्वास का होता है।

भूल जाइए कि आप तुच्छ और असमर्थ हैं। लक्ष्य तक पहुँचने की शक्ति का आप में अभाव है। वस मन के आत्म-विश्वास को उभरने दीजिए, आप देखेंगे कि आपकी छिपी शक्तियाँ प्रकाश में आ

जो कार्य आपको कठिन मालूम देते थे, वे बिल्कुल सरल हो

गए हैं। जो मार्ग भयानक लगता था, वह सुख और आनन्द से भर गया है। जहाँ काँटे थे वहाँ फूल खिल रहे हैं, जहाँ अन्धकार था वहाँ प्रकाश की किरणें फूट रही हैं। जो समस्याएँ आपको विकल बना रही थीं, वे ही आगे बढ़ने की प्रेरणा आपको दे रही हैं।

याद रखिए कि संसार में कोई महान् बनकर नहीं आता। संसार में जितने भी महापुरुष हुए हैं, उन्हें महानता विरासत में नहीं मिली थी। प्रारम्भ में वे भी आप हम जैसे ही थे। पर एक बात उनमें अवश्य थी—वह था उनका आत्म-विश्वास। उन्होंने अपनी शक्ति को पहचान लिया और वे जीवन के महान् उद्देश्य की सिद्धि के लिए आगे बढ़े। आत्म-विश्वास का दृढ़ शस्त्र उनके पास था। इसीलिए मुसीबतों और कठिनाइयों के समय, दुख और निराशा के समय वे विचलित नहीं हुए। उन्होंने अपना धैर्य, अपना साहस, अपना आत्म-विश्वास नहीं खोया। प्रारम्भ में दुनिया ने उनकी हँसी उड़ाई। उन्हें व्यर्थ की बातों के पीछे पड़ने वाला दीवाना बतलाया। पर इससे क्या, उन महापुरुषों ने अपना मार्ग बदल दिया ? क्या लक्ष्य की सिद्धि से वे पीछे हट गए ? आत्म-विश्वास के साथ वे ऊँचे उठते गए, आगे बढ़ते गए और महान् बन गए।

इसीलिए कहता हूँ कि अपने को तुच्छ मत समझो। इस कमजोर भाव को हृदय में मत पनपने दो कि अमुक कार्य करने की क्षमता आप में नहीं है। लक्ष्य तक पहुँचने की शक्ति आप में नहीं है। आप में असीम शक्तियाँ छिपी पड़ी हैं। आप में भी वही गुण, वही प्रतिभा, वही प्रकाश है, वही शक्ति है, जो औरों के पास थी। आप भी इस संसार में महान बनने के लिए पैदा हुए हैं। कोई भी ऐसा कार्य नहीं है जिसे आप नहीं कर सकते। इस सृष्टि में अत्यन्त वैभव बिखरा पड़ा है, पर पुरुष के लिए कोई वैभव दुर्लभ नहीं है। कवि दिनकर ने लिखा है—

'इस भुज इस प्रज्ञ के सम्मुख कौन ठहर सकता है ?
कौन विभव वह जो कि पुरुष से दुर्लभ रह सकता है ?
इतना कुछ है भरा विभव का कोष प्रकृति के भीतर।
निज इच्छित सुख भोग सहज ही पा सकते नर-नारी ॥'

कविता की इन पंक्तियों पर ध्यान दीजिए और सोचिए कि पुरु ने आत्म-विश्वास को लेकर आज तक क्या नहीं किया ? प्रकृति व अजेय शक्तियाँ उसकी गुलाम बन गईं। मनुष्य के आत्म-विश्वास वे सामने एवरेस्ट का महान् गिरि शृङ्ग नीचे झुक गया। उत्तरी औ दक्षिणी ध्रुव के ठेठ मुल्क मनुष्य के पैरों के चिन्हों से भर गए।

आप भी तो मनुष्य हैं। कोई भी कार्य आपके लिए दुर्लभ नहीं है। बस हृदय में आत्म-विश्वास जगाओ और निश्चय समझो कि आप वे सब महान् कार्य पूरा करेंगे, जिन्हें आप पूरा करना चाहते हैं। कोई बात नहीं कि आप अकेले हैं। साथी आपको छोड़ गए हैं। काँटों से भरा पथ है और निराशा का अन्धकार छाया हुआ है। पथ सुझाई नहीं देता है और कठिनाइयाँ पग-पग पर तुम्हारा उपहास करती हैं, फिर भी रुको मत, आगे बढ़ो। इच्छा शक्ति को प्रबल बनाओ और निश्चय कर लो कि जो कार्य तुमने अपने हाथों में लिया है उसे पूरा करके ही छोड़ोगे। निर्भय होकर कहो कि मैं अपने लक्ष्य को अवश्य प्राप्त करूँगा। याद रखो आत्मा की शक्ति अनन्त है। इसीलिए आत्म-विश्वासी अकेला होकर भी अकेला नहीं है। एक होकर भी अनेक है। साधन न होने पर भी अत्यन्त शक्तिशाली है।

डिजरायले तो एक साधारण-सा मनुष्य था। गरीब परिवार में उसका जन्म हुआ। न उसके पास साधन थे और न अनुकूल परि-स्थियाँ। चारों तरफ निराशा का वातावरण था पर उसका हृदय आत्म-विश्वास के प्रखर प्रकाश से जगमगा रहा था। उसे अपनी शक्ति पर भरोसा था। वह सोचा करता था कि जब गरीब यहूदी जोसफ, मिस्र का प्रधान मन्त्री बन सकता है तो मैं क्यों नहीं अपने देश का

डिजरायले का उदाहरण तुम्हारे सामने है। कितने स्पष्ट तौर से वह तुम्हें आत्म-विश्वास की महत्ता बतलाता है। उसका जीवन जैसे यह बात कहने वालों के लिए करारी चुनौती है कि हम हैं ही क्या, हमारी शक्ति ही क्या है, हम ऊँचे उठ ही कैसे सकते हैं? ये थोथी और कमजोर दलीलें, ये निर्मल और रोगी विचार इन्हें हटाओ, क्योंकि तुम्हें आगे बढ़ना है। तुम्हारे जीवन का महान् उद्देश्य तुम्हें ललकार रहा है। उठो और कमर कस कर तैयार हो जाओ, आत्म-विश्वास से भरी आँखों से सामने देखो—उज्ज्वल भविष्य तुम्हारा पथ निहार रहा है।

विपत्तियों का राजमार्ग

जर्मन के महाकवि गेटे की निम्नलिखित पंक्तियों पर ध्यान दो-

Who never ate his bread in sorrow
Who never spent the midnight hours
Weeping and waiting for the morrow
He knows you not ye heavenly powers

"ऐ दैवी शक्तियों ! वे मनुष्य तुम्हें नहीं जान सकते, जिन्हें दुखपूर्ण समय में भोजन करने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ तथा जिन्होंने रोते हुए और प्रातःकाल की प्रतीक्षा करते हुए रातें नहीं काटीं।"

इसीलिए कहता हूँ कि जिनके जीवन की धारा बिना किसी रुकावट के सीधे-सादे ढंग पर बहती रहती है, जिन्हें अपने जीवन में कभी भयंकर दुखों का सामना नहीं करना पड़ता, वे महान् जीवन की महान् शक्तियों के स्वामी नहीं बन सकते। महान् व्यक्तियों के जीवन का निर्माण उन परिस्थितियों में नहीं होता, जहाँ सुख और आनन्द के फल खिलते हैं, जहाँ वैभव और ऐश्वर्य की मुस्कानें पलती हैं। महान् जो बनते हैं वे तो विपत्तियों के उस भवन में पलते हैं, जिस पर दरिद्रता और प्रतिकूल परिस्थितियों का साया रहता है। महान् जो बनते हैं वे तो उस रास्ते पर चलते हैं, जिस पर कठिनाइयों के नुकीले काँटे बिछे रहते हैं। यही महान जीवन का राजमार्ग है। इसलिए

सबका सृजन और विकास विपत्तियों और दुखों के कठोर धरातल प
हुआ है। मुसीबतें सह कर वे सोची गई हैं और मुसीबतें सहकर वे पू
की गई हैं। इसलिए महान् वस्तुओं का कठिनाइयों से प्रत्येक दश
में सम्पर्क रहा है। यह एक सत्य से भरा तथ्य है कि एक सेन
नायक को विजय की अपेक्षा हार अधिक युद्ध-कुशल बनाती है
वाशिङ्गटन ने जितनी लड़ाइयाँ जीतीं, उससे अधिक युद्धों में व
पराजित हुआ, अन्त में सफलता उसके चरणों पर झुकी।

जीवन में पराजय और असफलता से सबकी भेंट होती है। क्षुद्र
लोग विघ्नों के डर से ही मुँह मोड़ लेते हैं। मध्यम लोग असफलता
की पहली चपेट से ही शुरू किया हुआ काम छोड़ देते हैं। कठिनाइयाँ
उन्हें पंगु और निढाल बना देती हैं। उत्तम लोग वे हैं जो विघ्न आने
पर भी काम नहीं छोड़ते। उसे पूरा करके ही मानते हैं। हर बार वह
उन्हें नया सबक सिखाती हैं। हर असफलता उन्हें आगे बढ़ने की प्रेरणा
देती है। हर कठिनाई उन्हें समस्या के हल की नई सूझ देती है।

असफलता द्वारा सफलता की प्रेरणा देखनी हो तो किसी बालक के
हाथ में खिलौना देकर उसे थोड़ी देर के लिए छीन लीजिए और फिर
खिलौने देने का अभिनय करिए। आप देखेंगे कि आपके द्वारा खिलौना
न दिए जाने पर भी बच्चा उसे पाने के लिए पूरी शक्ति लगा देगा।
वह हार नहीं मानेगा। हर बार खिलौने को पकड़ने का उसका संकल्प
दृढ़ से दृढ़तर बनता जायेगा। एक भावना उसके हृदय में बलवती
बनती जायगी और वह यह कि अबकी बार मैं इस खिलौने को अवश्य
ले लूँगा। बार-बार असफल होने पर भी यह दृढ़ भावना बालक के
हृदय में क्यों पैदा होती है? इसका कारण यह है कि बालक का हृदय
स्वस्थ है। निराशा और हीन भावना का घुन उसे नहीं लगा है। उसी
प्रकार यदि बालक के मन की तरह आपका हृदय भी स्वस्थ और दृढ़
है तो हर असफलता आपको सफलता का संदेश देगी।

विपत्तियों का प्रभाव वास्तव में बड़ा उपयोगी है और वे अनेक
रूपों में हमारे लिए लाभकारी बन जाती हैं। वे हमको हमारी छिपी

पर हार नहीं खाते।

अनेक महान् पुरुषों के जीवन-दृष्टान्तों द्वारा यह बात भली-भांति स्पष्ट की जा सकती है कि विपत्ति और विघ्न महान् जीवन में बाधक नहीं बनते। रोम का महान् दार्शनिक एपिकटेटस एक झोंपड़ी में रहता था। उसके रहने की जगह पर एक मेज, एक खटिया और फटी-पुरानी चद्दर के सिवाय कुछ नहीं था। प्रोफेसर मूर जैसा प्रसिद्ध विद्वान इतना गरीब था कि वह महान् विज्ञानवेत्ता न्यूटन की 'प्रिंसी-पिया' पुस्तक नहीं खरीद सकता था। वह अपने साथी से पुस्तक मांग कर लाया और सारी पुस्तक अपने हाथों से नकल की। विलियम कोबर्ट ने व्याकरण का अध्ययन कैसे किया, यह सचमुच एक मनो-रंजक कहानी है। वह एक साधारण सिपाही था और उसे जीवन-निर्वाह के लिए सिर्फ ६ पेंस मिलते थे। उसका न कोई साथी था और न कोई मित्र। उसके पास इतना पैसा भी नहीं था कि वह लेम्प जलाने के लिए तेल भी खरीद सके। केवल जाड़ों की रात में आग के सामने बैठकर पढ़ सकता था। कलम और कागज खरीदने के लिए वह जो पैसे व्यय करता था उसके लिए उस दिन उसे भूखा रहना पड़ता था। बातचीत, गप्प और शोरगुल के बीच उसे अध्ययन करना पड़ता

था। जब ऐसी कठिनाइयों और ऐसी निर्धनता के बीच विलिय
कोवर्ट सफलतापूर्वक अपने ध्येय को पा सका तो यह बात आपके लि
क्यों नहीं सम्भव है।

अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन ने अपने सम्बन्ध में लिखा है, "मेर
जन्म दरिद्र परिवार में हुआ था। मेरा पालन-पोषण अभावों के बीच
हुआ। मुझे ठीक अनुभव है कि जब घर में रोटी नहीं होती, तब माँ से
रोटी माँगने का क्या परिणाम होता था। केवल दस वर्ष की उम्र में
मैंने अपने घर से विदा ली। ग्यारह वर्ष तक एप्रेंटिस का कार्य करता
रहा। ग्यारह वर्ष की कड़ी मेहनत पर मुझे केवल ८ डालर मिले थे।
पर उनमें से मैंने अपने सुख के लिए एक भी खर्च नहीं किया था। मैं
महीनों जंगल में घूमा, बैल हाँके, लकड़ी काटी। सबेरे तड़के उठकर
बहुत रात तक मैं कठिन परिश्रम किया करता था और उसकी
मजदूरी मुझे छै डालर प्रतिमास मिलती थी। प्रत्येक डालर मुझे उस
समय इतना ही बड़ा प्रतीत होता था जितना बड़ा आज चन्द्रमा प्रतीत
होता रहा है।"

विदेशों में भारतीय संस्कृति की ध्वजा फहराने वाले श्री श्रीनिवास
शास्त्री का जीवन इस बात का ज्वलन्त उदाहरण है कि बड़े-बड़े महा-
पुरुषों का जन्म प्रायः राजमहलों में न होकर गरीबों के झोंपड़ों में
होता है। श्रीनिवास शास्त्री का जन्म उस घर में हुआ था, जहाँ नमक
खरीदने के लिए भी पैसे नहीं थे। पर यही बालक अपने जीवन में बड़े
से बड़े मुकुटधारियों और राष्ट्रपतियों का सम्मानित अतिथि बना।
श्रीनिवास शास्त्री ही क्यों, गोपालकृष्ण गोखले, महामना मदनमोहन
मालवीय, सर सी० वाई० चिन्तामणि के जीवन को देखो। जिनकी
दरिद्रता सहचरी थी और महानता चेरी थी।

पूज्य गोखले ने कितना सत्य कहा है कि, "हिन्दुस्तान का इतिहास
उन महापुरुषों की जीवन गाथा है, जिन्होंने दरिद्रता मे अटूट रिश्ता
जोड़ा है।" हमारे देश में वही ऊँचा उठा है, वही महान् बना है, जिसने
धन-दौलत को अपने जीवन में स्थान न देकर दरिद्रताओं व कठिनाइयों

असफल होने पर यदि मनुष्य निरुत्साह हो जाय, तो वह मनु
ही क्या ? मनुष्य तो वही है जो बार-बार की असफलता पर भी दू
उत्साह से अपने काम में लग जाता है। असफल होने पर भी व
उद्योगशील रहता है।

आशा उत्साह की जननी है। गांधी जी का कहना है कि, "आश
अमर है और उसकी आराधना कभी निष्फल नहीं होती।" आशावाद
हर कठिनाई में अवसर देखता है और निराशावादी हर अवसर मे
कठिनाई देखता है। इसलिए जिन्दगी में आशावान बनो। प्रयत्न मे
असफल होने पर भी निराश मत बनो, क्योंकि निराशा नरक का दल-
दल है और आशा स्वर्ग की ज्योति है। कठिनाइयों में या पराजय के
क्षणों में बहुत से मनुष्य निराशा के अन्धकार से अपने को ढक लेते हैं।
वे निकम्मे और अकर्मण्य लोग अपना सारा दोष भाग्य और ईश्वर पर
लाद देते हैं, पर आशावान और उत्साही लोग ऐसा नहीं करते। वे
असफल होने पर असफलता के कारणों को ढूँढ़ कर आगे बढ़ने का
सतत प्रयत्न करते हैं।

असफलता और कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने का दूसरा
अजेय शस्त्र है—धैर्य। रस्किन का कहना है कि, "शूरवीरता का सबसे
शानदार, सबसे सुन्दर और सबसे प्रभावशाली अङ्ग है-धैर्य।" वस्तुतः
तमाम खुशियाँ और तमाम शक्तियों का मूलाधार है धैर्य। बड़ी-बड़ी
विपत्तियाँ आने पर भी धीरज मत खोओ। धैर्य मत छोड़ो। गोस्वामी
तुलसीदास जी ने कहा है।

"धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपत काल परखिए चारी।"

विपत्तियों में दुर्गम पर्वतों को पार करने के लिए धैर्य से बढ़ कर
ईश्वर ने दूसरी चीज ही नहीं बनाई। इसलिए जीवन-संग्राम में आगे
कदम बढ़ाने के लिए, विघ्न और असफलताओं के कठोर आघातों
को सहन करने के लिए हमें धैर्य का कवच धारण करना चाहिए।
विपत्ति और दुख के समय चित्त का आनन्द केवल धैर्य की मधुर
गोद में निवास करता है। जो मनुष्य धैर्यशील होता है, वह दुर्दिनों

में भी हँसता रहता है, जबकि अधैर्यवान पुरुष अच्छे दिनों में भी रोता है। धैर्यहीन मनुष्य का हृदय समुद्र के किनारे पर बनी हुई उस कुटी के समान है, जो एक लहर के एक ही आघात से धूल में मिल जाती है। धैर्यवान पुरुष उस अडिग और दृढ़ चट्टान के समान है जिसका समुद्र की लहरें कुछ भी नहीं बिगाड़ सकतीं। संस्कृत का एक श्लोक है—

कदर्थितस्यापि हि धैर्य वृत्तेनं शक्यते धैर्य गुणं प्रमाष्टुम।
अधोमुखस्यापति कृतस्य वन्हेनधिः शिखायाति कदाचदेव ॥

अर्थात् "विपद्ग्रस्त मनुष्य यदि धैर्यवान हो तो उसकी धैर्य वृत्ति को कोई नहीं मिटा सकता, जैसे प्रज्ज्वलित अग्नि को यदि कोई उलट दे तो भी ज्वाला ऊपर को ही रहती है, नीचे को नहीं।"

इसलिए विपत्तियों के समय धैर्य रखो। धीरज के साथ उनका मुकाबला करो। जब तक लक्ष्य पूरा न हो जाए, विघ्न और प्रलोभनों से घबड़ा कर चैन से मत बैठो। समुद्र-मंथन से देवों को अमूल्य रत्न मिले तो भी सन्तोष नहीं हुआ। उसके बाद भयंकर विष निकला, उससे डरे नहीं, जब तक अमृत न निकल आया रुके नहीं। धीर पुरुष चाह जितने प्रलोभन या भय के प्रसंग आवें, निश्चित कार्य सिद्ध किए बिना चैन से नहीं बैठते।

अब बस धैर्य का कवच पहिन कर उत्साह की शक्ति लेकर विपत्तियों के राजमार्ग पर नदी के प्रसन्न वेग की तरह बढ़े चलो। कठिनाइयाँ तुम्हें ललकारेंगी, असफलताएँ तुम्हारा उपहास करेंगी, परन्तु तुम्हारा हर अगला कदम सफलता के द्वार के नजदीक होगा।

अध्यवसाय

जॉनसन का कहना है कि, 'महान् कार्य शक्ति से नहीं अध्यवसाय से किए जाते हैं।' प्रत्येक कार्य पहले असम्भव प्रतीत होता है। परन्तु निरन्तर अभ्यास के द्वारा वह सम्भव वन जाता है संसार में जितने भी महान् कार्य हुए हैं, वे सब अधिकाधिक लगन और अध्यवसाय के साथ किए जाने पर ही पूरे हुए हैं। सभी मनुष्य कवि और वक्ता वन सकते हैं, सभी मूर्तिकार और चित्रकार वन सकते हैं, पर शर्त यह है कि उन्हें अध्यवसायी होना चाहिए। आप किसी भी महान् पुरुष की जीवनी पर दृष्टिपात करिए, उनके सारे कार्य निरन्तर अभ्यास, अपने ध्येय के प्रति सच्ची लगन, अध्यवसाय द्वारा पूरे हुए हैं।

एकलव्य की कहानी से आप परिचित होंगे। द्रोणाचार्य ने उसे अपना शिष्य नहीं बनाया तो वह अपने आप ही धनुर्विद्या का अभ्यास करने लग गया। सच्ची लगन के साथ वह अपने कार्य में जुट गया। थोड़े ही दिनों में उसने धनुर्विद्या में इतनी क्षमता प्राप्त कर ली कि उसका लक्ष्य-वेध अर्जुन जैसे महान् धनुर्धारी के लिए भी ईर्ष्या का विषय वन गया। एकलव्य की साधना, निष्ठा, सतत प्रयत्न ने सबको आश्चर्य चकित कर दिया। गुरु द्रोणाचार्य ने एकलव्य का आदर्श उपस्थित करते हुए अपने शिष्यों से कहा कि यदि तुम भी महान् धनुर्धारी वनना चाहते हो तो एकलव्य से शिक्षा ग्रहण करो।

जिसने अध्यवसाय के बल पर ही लक्ष्य भेद करने में इतनी कुशलता प्राप्त कर ली।

संस्कृत का उद्भट विद्वान बोपदेव का उदाहरण हमारे सामने है। वे भागवत पुराण के रचयिता थे। पर जब उन्होंने शिक्षाध्ययन प्रारम्भ किया था, तब पढ़ने में उनका मन नहीं लगता था। गुरुजी जो कुछ भी पढ़ाते, बोपदेव कुछ समझ नहीं पाते थे। बोपदेव के अन्य साथी पढ़ लिख कर विद्वान बन गए, परन्तु बोपदेव मूर्ख के मूर्ख ही रह गए। लोग बोपदेव की जड़-बुद्धि का उपहास करने लगे। बोपदेव की भी धारणा बन गई कि विद्या पढ़ना उनके वश की बात नहीं है। बस वे विद्यालय से भाग खड़े हुए और एक कुएँ के पास पहुँचे, जहाँ स्त्रियाँ पानी भर रहीं थीं। उन्होंने देखा कि जल को खींचने वाली रस्सियों से कुएँ का पत्थर घिस गया है और उसमें गहरी लकीरें पड़ गईं हैं। बोपदेव के मस्तिष्क में विचार उमड़ पड़े। जब रस्सी जैसी वस्तु पत्थर जैसे कठोर पदार्थ को घिस देती है, तब क्या मेरी मन्द बुद्धि विद्या ग्रहण नहीं कर सकेगी? बस वे तुरन्त ही उल्टे पाँव विद्यालय की ओर लौट पड़े। सच्ची लगन से उन्होंने विद्याध्ययन किया और वे अपने विषय के धुरन्धर विद्वान बन गए।

फ्रांस देश में लिले नामक एक स्थान है। वहाँ के एक निर्धन परिवार में एक बालक का जन्म हुआ। उसका नाम था सीजर डुकार्नो। वह शरीर से अंग-भंग था। उसके हाथ किसी भी कार्य को करने में अयोग्य थे। देव ने उसे इतना भाग्यहीन बनाया था कि उसके सामने सिवाय गलियों में भीख माँगने के और कोई चारा नहीं था। आप कहेंगे कि ऐसा मनुष्य किसी भी योग्य नहीं है। उसका जीवन व्यर्थ और भार स्वरूप है। पर सीजर डुकार्नो ने अपने जीवन द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि हाथों से अपाहिज होने पर भी वह उन्नति कर सकता है और ऐसे कार्य कर सकता है जो हाथ वाले सैकड़ों मनुष्य भी नहीं कर सकते। डुकार्नो ने हाथों का कार्य पैरों से करने का

दृढ़ निश्चय कर लिया। सतत अभ्यास और सच्ची लगन से पैरों द्वारा ही लेखनी चलाने और ब्रुश फेरने में इतनी चतुराई कर ली कि वह बहुत बड़ा चित्रकार बन गया। लिले की चि शिनी में जब उसके चित्र रखे गये तो लोगों ने उसके चित्रों की प्रशंसा की। उसके छः वर्ष बाद ही वह पेरिस की एकेडेमी में पाने की प्रतियोगता में सम्मिलित हुआ। ढाई सौ प्रतियोगिय उसका स्थान दूसरा था। राज्य की ओर से उसे छात्रवृत्ति मिली वह एकेडेमी में अध्ययन करने लगा। चित्रकार की हैसियत से उ कुशलता बढ़ती ही गई और उसने पेरिस के विख्यात चित्रकार अपना बहुत ऊँचा स्थान बना लिया।

वास्तव में अध्यवसाय और अभ्यास के लिए दृढ़ संकल्प का है बहुत जरूरी है। मनुष्य के अन्दर जो शक्तियाँ छिपी हुई हैं उन्हें करके, संगठित करके, संकल्प बल द्वारा मनुष्य अपनी काया पलट व सकता है। अपने ध्येय के प्रति सच्ची लगन, अदम्य, उत्साह और द संकल्प द्वारा वह कठिन से कठिन कार्य को भी सरल बना सकता है यदि आप विद्यार्थी हैं और कोई विषय आपको कठिन जान पड़ता है आप उसमें कमजोर हैं, तो डरिये मत। उस विषय से घबराइये मत संकल्प कीजिए कि आप उस विषय में हार नहीं मानेंगे, उससे पीठ नहीं दिखायेंगे, बल्कि उस विषय के सीखने में लग जायेंगे। सतत प्रयत्न करिए, निरन्तर अभ्यास करिए और आप देखेंगे कि उस विषय पर आपका अधिकार हो रहा है। सन्त विनोबा भावे ने अरबी जैसी कठिन भाषा सीखने का निश्चय किया और थोड़े ही दिनों में वे उसके पण्डित बन गए।

शेरिडन इङ्गलैण्ड के प्रसिद्ध वक्ता हो गए हैं, पर प्रारम्भ में वे ऐसे कुशल वक्ता नहीं थे। एक बार जब शेरिडन अपना भाषण समाप्त कर चुके तो एक संवाददाता ने व्यंग्य के स्वर में कहा, "मिस्टर शेरिडन आप कभी कुशल वक्ता नहीं बन सकते।"

शेरिडन ने नम्रतापूर्वक जवाब दिया, "ऐसी बात नहीं महाशय ? मैं कुशल वक्ता बन सकता हूँ और थोड़े ही दिनों में तुम्हें मेरी बात पर विश्वास करना होगा।"

शेरिडन के निरन्तर अभ्यास ने उसे कुशल वक्ता बना दिया। इङ्गलैण्ड में लार्ड हेस्टिंग्ज पर जो आरोप लगाये गये थे, उसका सबसे जोरदार और प्रभावशाली समर्थन शेरिडन ने किया था। उसके भाषण को सुनकर प्रसिद्ध वक्ता फाक्स तक को कहना पड़ा कि इतना सुन्दर भाषण इंगलैण्ड की पार्लियामेंट में किसी ने भी नहीं दिया।

एक प्रसिद्ध लेखक का कथन है, "सफलता प्राप्त करने का सच्चा रहस्य अपने विषय पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करना है।" यह अधिकार निरन्तर अध्यवसाय और अनुशीलन करने से प्राप्त होता है। जिन लोगों ने संसार को चमत्कारपूर्ण चीजें दी हैं, उनमें प्रतिभा और योग्यता इतनी नहीं थी जितनी कि सच्ची लगन के साथ कार्य करने का गुण। उनमें अन्य स्वाभाविक सद्गुण भले ही कम रहे हों, पर वे अध्यवसायी अवश्य थे। जीवन की दौड़ में प्रायः यह देखा जाता है कि विलक्षण प्रतिभाशाली पराजित होते हैं तथा क्रमशः लगातार उद्योग करने वाले बाजी मार ले जाते हैं। इटली में एक कहावत है जिसका आशय है कि "जो धीरे-धीरे परन्तु निरन्तर चलते रहते हैं वे बहुत आगे बढ़ जाते हैं।" हमारे यहाँ के एक कथन से आप अवश्य परिचित होंगे, "करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।" मतलब साफ है, अभ्यास के निरन्तर प्रयोग से मूर्ख भी विद्वान् बन जाते हैं।

अपने लक्ष्य की प्राप्ति में उतावले मत बनो। जीवन की दौड़ में भागो मत। स्थिर, पर दृढ़, कदमों से आगे बढ़ो। इस बात की परवाह मत करो कि तुम्हारा कार्य शीघ्र पूरा नहीं हो रहा, तुम अपने कार्य में लगे रहो। तुम्हें सफलता अवश्य मिलेगी। इतना याद रखो कि सर्वोत्तम और स्थायी उन्नति वही है, जो निरन्तर अभ्यास के प्रयोग से प्राप्त होती है। वह नहीं जो उतावलेपन से भाग कर प्राप्त की जाती

है। धैर्य के साथ आप प्रतीक्षा कीजिए, आप देखेंगे कि शहतूत क
पत्तियाँ रेशम बना रही हैं।

गिवन ने "रोम साम्राज्य का पतन" नामक अपना प्रसिद्ध इति
हास २६ वर्षों के निरन्तर उद्योग से पूरा किया था। वेबेस्टर को अंग्रेज
कोष के निर्माण में छब्बीस वर्ष लगे थे। श्रीनगेन्द्रनाथ वसु ने बंग भाष
का विश्वकोष अट्ठाइस वर्ष के घोर परिश्रम द्वारा तैयार किया था
जब उन्होंने इसका निर्माण कार्य आरम्भ किया था, तब उनकी अवस्थ
सिर्फ बारह वर्ष की थी।

अध्यवसायी के लिए एक बात बहुत जरूरी है और वह यह कि
उसे दुविधा से सदैव सतर्क रहना चाहिए। जो एक बार दुविधा के जल
में फँस गया, फिर उसका निकलना मुश्किल है। हमारे यहाँ एक कहा-
वत है, "दुविधा में दोनों गये माया मिली न राम" अर्थात् दुविधा से
ग्रसित मनुष्य कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकता। जो मनुष्य दो खरगोशों
के पीछे दौड़ता है, वह एक को भी नहीं पा सकता। यह हमारे लिए
अशोभनीय बात है कि किसी कार्य को हम शुरू करते हैं, कुछ विचार
न निश्चित करते हैं, पर शीघ्र किसी की सलाह से उन विचारों और
...यों को हम बदल देते हैं। आज वह एक विचार ग्रहण करता है तो
कल दूसरे की ओर हाथ बढ़ाता है। आज वह जिस काम को शुरू करता
है, कल दूसरा ग्रहण कर लेता है। उसकी दशा उस पंख के समान हो
जाती है जो हवा में इधर-उधर उड़ता रहता है। उसका चंचल मन,
अस्थिर हृदय उसे कुछ करने ही नहीं देता। ऐसे आदमी किसी तरह
पेट भले ही भर लें, पर कोई बड़ा काम नहीं कर सकते। वे एक कदम
भी आगे नहीं चल सकते, वरन् पीछे ही लौटते जाते हैं।

किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि हम अपने लक्ष्य और विचारों
के प्रति जिद्दी रुख अपना लें और बार-बार कहने पर अपने अनुचित
कार्य को नहीं छोड़ें। वास्तव में अध्यवसाय और हठ में बहुत अन्तर
है। हठी लोगों में लगन नहीं होती और न उनके पास उत्तम संकल्प
ही होते हैं। वे या तो ईर्ष्यावश या किसी का अहित करने की दृष्टि से

हठधर्मी का वाना धारण करते हैं। अध्यवसायी व्यक्ति इसके विपरीत सोच-विचार कर अपना लक्ष्य चुनता है और फिर धीरे-धीरे लक्ष्य की ओर गतिशील होता है। मार्ग में वाधाएँ और कठिनाइयां आने पर भी वह अपने कार्य को पूरा कार्य किये विना नहीं छोड़ता।

कारलाइल ने ठीक ही कहा है कि, 'सवसे पहले अपने कार्य को पह-चान लो और फिर पूरी ताकत से उसे करने लग जाओ।' प्रत्येक कार्य को सफल वनाने के लिए यह आवश्यक है कि रात-दिन उसी के सम्वन्ध में मनन और चिन्तन किया जाय। इसके साथ उसको पूरा करने में अपनी समस्त शक्ति लगा दी जाय। प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन से जव यह पूछा गया कि अपने अद्भुत अनुसंधान किस प्रकार कर डाले तव उसने यही उत्तर दिया था, "उन पर निरन्तर विचार करने से।"

इसलिए हे महान् जीवन की ओर अग्रसर होने वाली शक्तियों! अध्यवसाय के महत्त्व को पहचानो और उसे अपने जीवन में उतारो। स्वेटमार्डेन की ये अमर पंक्तियाँ तुम्हें उद्‌वोधन दे रही हैं। इन्हें समझो और ग्रहण करो—

"गतिशील पत्थर को काई नहीं लगती। काम में आने वाले लोहे पर जंग नहीं लगता। वार-वार प्रयत्न करने वाला असफल नहीं होता। अपने हाथ में लिए हुए कार्य पर जमे न रहने के कारण ही असफलता मिलती है। क्या तुम एक भी ऐसा उदाहरण वता सकते हो जहाँ सच्ची सफलता की जड़ में दृढ़ता न छिपी हो? अमर चित्र-कारों को अपनी कूचियाँ कागज पर चलाते क्या वर्षों नहीं वीत जाते? अमर लेखक क्या यों ही वन जाते हैं? क्या उन्होंने वर्षों अभ्यास के वाद अपनी रचना पूर्ण नहीं की हैं। जिस समय संसार ऐश-आराम में था, उस समय वे अपने हाथों में कलम लिए अपने दिमाग और अध्ययन को चिरस्थायी वना रहे थे। निराश मत वनो और अगर निराश वनते हो तो अपना कार्य वन्द मत करो। निराशा में भी कार्य करते जाओ।"

स्वावलम्बन

संसार के सोये मानव समुदाय को जगाने वाले गौतमबुद्ध ने उद्‌वोधन देते हुए कहा था, "स्वयं ही अपनी परीक्षा कर अपने को आप उठा। इस प्रकार तू विचारशील वन और अपनी रक्षा स्वय करता हुआ दुनिया में सुखपूर्वक विहार कर।" वस बुद्ध ने आपके सामने सुखी जीवन का रहस्य खोल दिया है। आपका जीवन एक संग्राम-स्थल है। अनेक प्रकार की परिस्थितियों से आपकी भेंट होती है। कभी दुख के वादल छा जाते हैं, कभी सुख का प्रकाश। कभी विजय के क्षण आते हैं तो कभी पराजय की घड़ियाँ निराशा की काली चादर से आपके जीवन को ढक देती हैं। ऐसे विपम जीवन में भी सुखपूर्वक विहार करना सम्भव है। कठिनाइयों के पर्वत चूर हो जायेंगे। परिस्थितियाँ आपकी गुलाम वन जायेंगी। सफलता आपकी वाट जोहेगी, वस स्वावलम्वन के मन्त्र का आप अपने जीवन मे साध लें।

इस कर्मशील संसार में वही व्यक्ति महानता के रथ पर आरूढ़ होकर अपनी यश-सुरभि चारों ओर फैलाता है, जिसने स्वावलम्वन के इस मन्त्र को " अपना काम अपने आप करो" को अपने जीवन में पूरी तरह से उतार लिया है। सचमुच वही व्यक्ति महान् है जिसने कि अपने जीवन का निर्माण अपने हाथों से किया है, अपनी उन्नति के

वीज स्वयं वोए हैं। स्वावलम्बन के धरातल पर जिस व्यक्ति के पैर मजबूती के साथ टिके हैं, जिसने कि भली प्रकार से समझ लिया है कि मनुष्य ही अपने भाग्य का निर्माता है और यह भी कि कठिनाइयों के चौमुखी तूफानों के वीच उसका कोई भी संगी-साथी नहीं वन सकता, ऐसा स्वावलम्वी पुरुष जीवन की विषम परिस्थितियों पर भी विजय प्राप्त कर सकता है। कठिनाइयों के दुर्गम पर्वतों को खिलवाड़ समझ कर हँसते-हँसते चूर कर सकता है।

और फिर ऐसे भी व्यक्ति हैं जिन्होंने स्वावलम्बन का पाठ नहीं पढ़ा। जैसे बेल, वृक्ष के सहारे पनपती है, उसी प्रकार जो दूसरों के सहारे जीते हैं, अपनी सामर्थ्य, अपना पुरुषार्थ नहीं रखते। जो पग-पग पर दूसरों का मुँह ताका करते हैं, विना दूसरों की सहायता के कुछ भी नहीं कर सकते, ऐसे मनुष्यों का जीवन ही क्या? स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में, "ऐसे जीव जीते हुए होने की अपेक्षा मरे हुए अच्छे हैं।"

अंग्रेजी की एक कहावत है, "Good helps those who help themselves" अर्थात् ईश्वर उन्हीं की सहायता करता है, जो अपनी सहायता अपने आप करते हैं। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह है कि भाग्य भी उनकी सहायता करता है, जो अपने जीवन का निर्माण अपने आप करते हैं। आप सौभाग्यशाली वनना चाहते हैं, ईश्वर-कृपा के अभिलाषी हैं, परिस्थितियों की अनुकूलता के इच्छुक हैं तो सबसे पहले आप अपने पैरों पर खड़े होइये। जो कार्य आपको पूरा करना है, जो लक्ष्य आपको सिद्ध करना है, उसे अपने हाथों में लीजिए। किसी और का मुँह मत ताकिए, अपनी शक्ति पर विश्वास कीजिए और पुरुषार्थ से काम लीजिए, आप देखेंगे भाग्य आपका साथ दे रहा है, ईश्वर आप पर मेहरवान है और परिस्थितियाँ अनुकूल वनकर आपकी सहायता कर रही हैं।

स्वावलम्वन के लिए वास्तव में आत्म-विश्वास का होना वहुत आवश्यक है। जव तक हमें अपनी शक्ति पर भरोसा न होगा, तव तक

हम अपना कार्य अपने हाथों से करने की बात मन में ही कहाँ से ल सकते हैं ? फिर तो खुद निराश बन कर हम दूसरों से सहायता क प्रार्थना करेंगे। इसका फल यह होगा कि धीरे-धीरे हमारी कार्य-शक्ति का क्षय होता जायगा। हमारा विश्वास अपने ऊपर से हट जायगा और तब कोई भी कार्य करने में हम अपने को असमर्थ पायेंगे। समाज, राष्ट्र और संसार के लिए तो हम कर ही क्या सकेंगे, स्वयं अपने जीवन के भी कार्य पूरे नहीं कर सकेंगे। इसलिए स्वावलम्बी बनने के लिए आवश्यक है कि हम आत्म-विश्वासी बनें, अपनी शक्ति पर विश्वास करें और जो भी कार्य हाथ में लें, उसे पूरा करें।

एक विद्यालय की छोटी-सी घटना है। एक आठ वर्ष की बालिका स्टूल के ऊपर खड़ी होकर दीवाल पर लगे हुए रैक में से चित्रों की पुस्तक लेने की कोशिश कर रही थी। बार-बार वह प्रयत्न करती, पर रैक के ऊँचे होने के कारण चित्रों की पुस्तक उसके हाथ में नहीं आती थी। उसी समय एक अध्यापिका उधर से गुजरी। अध्यापिका को देख कर बालिका बड़ी प्रसन्न हुई। उसने अध्यापिका महोदय से चित्रों की पुस्तक रैक से उतार देने को कहा। अध्यापिका पहले तो पुस्तक उतारने के लिए आगे बढ़ी, पर फिर कुछ सोच कर रुक गई। बालिका से वे कहने लगीं, "यह पुस्तक तो तुम अपने हाथों से उतार सकती हो। यह साधारण-सा कार्य भी तुम से नहीं होता जिसके लिए कि तुम्हें मेरी सहायता की आवश्यकता पड़ गई।" उस नन्हीं बालिका पर इन बातों का बहुत प्रभाव पड़ा। उसने कहा, "मैं अवश्य चित्रों की पुस्तक को उतार लूँगी। यदि मैं गिरने लगूँ तो आप मेरी रक्षा कर लें।" अध्यापिका ने स्वीकृति दे दी। बालिका ने अबकी बार आत्म-विश्वास और निर्भीकतापूर्वक पुस्तक लेने का प्रयत्न किया, वह ऊपर को उछली और अबकी बार पुस्तक उसके हाथों में थी। स्टूल कुछ हिला और बालिका नीचे गिरने को हुई, पर पास खड़ी अध्यापिका ने उसे सम्हाल लिया। बालिका अपनी सफलता पर बहुत प्रसन्न थी।

एक अन्य अध्यापिका भी इस दृश्य को देख रही थी। उसने पास आकर अध्यापिका से पूछा कि उसने स्वयं ही वह पुस्तक लेकर बालिका को क्यों नहीं दे दी? यदि बालिका नीचे गिर जाती तो। पहली अध्यापिका ने उत्तर दिया, "यदि मैं बालिका को पुस्तक उतार कर दे देती तो इससे बालिका का आत्म-विश्वास नष्ट हो जाता। इस प्रकार वह अन्य दूसरे कामों में दूसरों का मुँह ताका करती। मैंने उसकी स्वावलम्बन की भावना को पुष्ट बनाया है। अब वह अपना कार्य अपने हाथों से ही करेगी।" आप स्वयं ही विचारिये कि अध्यापिका महोदय के इस कथन में कितना सत्य है।

हम स्वावलम्बन से क्यों जी चुराते हैं? इसका एक मुख्य कारण तो यह है कि हम आरामतलब जिन्दगी के भूखे हैं। हम चाहते हैं कि हमें कुछ भी नहीं करना पड़े और हमारे सारे कार्य पूरे हो जावें। दूसरे हमारे लिए परिश्रम करें और हम बैठे-बैठे उनकी मेहनत का उपभोग करें। इस प्रकार दूसरों की मेहनत पर जीना, खुद कुछ न करना, कितना बड़ा पाप है, कितनी बड़ी चोरी है, मनुष्य के माथे पर कितना बड़ा कलंक है, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। ऐसे मनुष्य तो पृथ्वी के भार स्वरूप हैं। उनका सम्पूर्ण जीवन उस रोगी मनुष्य की भाँति होता है जो खाट पर पड़ा मृत्यु और दुःख से भरी जिन्दगी की घड़ियाँ गिना करता है।

यह हमारे लिए कितनी लज्जा और क्षोभ की बात है कि हम अपना कार्य अपने हाथों से करते हुए शर्माते हैं। अपने बड़प्पन के थोथे अभिमान को प्रकट करने के लिए हम इस बात में गौरव अनुभव करते हैं कि हमारा कार्य दूसरे आदमी करें। अपना कमरा साफ करने के लिए नौकर रखेंगे, अपनी वस्तुएँ बाजार से मँगाने के लिए नौकर रखेंगे, सफर में चलेंगे तो नौकर रखेंगे, घर के सारे काम-काज नौकरों से करवायेंगे, गर्ज यह है कि बिना नौकरों की सहायता के अपनी उँगली भी नहीं हिला सकेंगे। सोते-जागते, उठते बैठते दैनिक जीवन के प्रसङ्गों में हम दूसरों पर अवलम्बित रहेंगे और तुर्रा यह कि जितने

अधिक नौकर हम अपने लिए रखेंगे, उतना ही अधिक बड़ा हम अप
को महसूस करेंगे। आधुनिक जीवन की टीमटाम और दिखावे
फैशन ने तो हमारी परावलम्बन की प्रवृत्ति को और भी तेज कर दि
है। यह रोग इतना व्यापक बन गया है कि इसने हमारे जीवन क
बिलकुल खोखला बना दिया है। पर सोचो, क्या इस प्रकार ह
महानता के शिखरों पर चढ़ सकते हैं? अकर्मण्यता, आलस्य औ
दूसरे के सहारे जीने की भावना से हमारी गति पहले ही पंगु बन
जाती है, हमारी शक्ति को लकुवा मार जाता है। आगे बढ़ना तो दूर
रहा नैतिक, आर्थिक और शारीरिक रूप से हमारा पतन शुरू हो
जाता है। संसार के महान् पुरुषों पर दृष्टिपात करो। देखो, क्या
उन्होंने दूसरों के सहारे जीवित रहकर महान कार्य किये हैं? क्या
उनका जीवन इस प्रकार की झूठी शान-शौकत के बीच पला था?
यदि नहीं तो फिर आप क्यों झूठे बड़प्पन और झूठी शान के चक्कर में
फँसकर दूसरों के सहारे जीवन बसर करना चाहते हैं? आप क्यों नहीं
अपना काम अपने हाथों से करते हैं? अपना कार्य करने में संकोच
ौर शर्म कैसी?

पीछे-पीछे चलने लगा। युवक का गंतव्य स्थान आया और उसने देहाती से सामान रखने के लिए कहा। देहाती ने आज्ञा का पालन किया। युवक ने चट से अपने बटुये में से एक चवन्नी निकाल कर देहाती की ओर बढ़ाई। पर वह व्यक्ति बोला, "नहीं बाबूजी, मैं पैसा नहीं लूँगा। मैंने आपका सामान पैसे लेने के लिए नहीं उठाया है बल्कि अपने भाई की थोड़ी सी सहायता कर दी है, जो कि अपना बक्स अपने हाथ से नहीं उठा सकता। जब आप अपना सामान स्वयं अपने हाथ से उठाने लगेंगे तभी मैं समझूँगा कि मुझे मेरी मजदूरी मिल गई।"

युवक उस सरल देहती के अर्थ भरे वचनों को सुनकर दङ्ग रह गया। उसने समझ लिया जो व्यक्ति उसके सामने खड़ा है, वह साधारण नहीं है। उसने गौर से चेहरे की ओर देखा। शर्म से उसकी गर्दन झुक गई और वह देहाती के चरणों पर गिर पड़ा। वह सरलता और सादगी की मूर्ति और कोई नहीं ईश्वरचन्द्र विद्यासागर थे, जिनके दर्शन के लिए वह युवक इतनी दूर से चल कर आया था। यह घटना, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का यह आदर्श, तुम्हारे हृदय में स्वावलम्बन के प्रति कुछ मोह जगा सकेगी।

महात्मा गांधी के जीवन का प्रसंग है, जब वे अफ्रीका में रहते थे। गांधीजी के ही शब्दों में इसे सुनिए "मेरा रहन-सहन शुरू में कुछ ठाट-बाट का था, परन्तु उसका मोह मुझे नहीं हुआ। इसीलिए घर-गृहस्थी जमाते ही मैंने खर्च कम करने की शुरूआत की। धुलाई का खर्च कुछ ज्यादा मालूम हुआ। धोबी नियमित रूप से कपड़े भी नहीं लाता था, इस कारण दो-तीन दर्जन कमीज और उतने ही कालर से कम काम नहीं चलता था। मैं कालर रोज बदलता था और कमीज रोज नहीं तो तीसरे दिन जरूर बदलता था, इस तरह दोहरा खर्च पड़ता था। यह मुझे व्यर्थ मालूम हुआ। इसलिए घर पर ही कपड़े धोने की शुरूआत की। धुलाई-विद्या की पुस्तक पढ़कर धोना सीख लिया।

है, जिसे वह अपने आप प्राप्त करता है। यह विचार अक्षरशः सत्य है
संसार के सभी महापुरुषों ने स्वयं ही अपने आपको शिक्षा दी है
औरों से उधार लेकर वे नहीं बढ़े और के पैरों पर नहीं खड़े हुए
यद्यपि उन्हें ऐसा करने में अधिक परिश्रम और सतत् उद्योग तो कर
पड़ा था, परन्तु जो कुछ उन्होंने प्राप्त किया वह उनका अपना था औ
चिरस्थायी था। यह तो आपका भी प्रतिदिन का अनुभव होगा f
अपने द्वारा ज्ञात की हुई बात पर पूर्ण अधिकार हो जाता है।। आयु
पर्यन्त तक हम उसे नहीं भूलते। गणित के विद्यार्थी जानते होंगे f
जिस प्रश्न को वे अपने ही मस्तिष्क से कठिन परिश्रम और लग
द्वारा हल करते हैं वह प्रश्न उन्हें जीवन भर याद रहता है, पर ज
प्रश्न वे अपने अन्य साथियों या शिक्षकों की मदद से हल करते हैं
शीघ्र ही दिमाग से उतर जाते हैं।

एक नीतिकार का यह वचन आपने अवश्य सुना होगा, "स्वाव-
लम्ब की एक झलक पर न्यौछावर कुबेर का कोष।" वास्तव में जिनके
पास स्वावलम्बन जैसा अद्भुत रत्न है, उसे फिर किसी धन और दौलत
की जरूरत ही नहीं है। सचमुच स्वावलम्बन की महिमा के सम्मुख
कुबेर का विशाल धन भी तुच्छ है। जो स्वावलम्बी हैं, सृष्टि के सारे
वैभव और सुख उनके चरण चूमते हैं। परन्तु जो अभागा इस महान्
पदार्थ से वंचित है, वह जीवन भर दुर्भाग्य के आँसू रोता रहेगा।

महामुनि कणाद जहाँ प्रकांड मनस्वी और पहुँचे हुए दार्शनिक थे,

गरीब मुझे और कोई नहीं दिखाई पड़ता।" कणाद मुनि ने हँसकर कहा, "राजन् मैं गरीब नहीं हूँ। गरीब तो वे हैं जो अपना पेट भरने के लिए दूसरों पर आश्रित हैं। मुझ जैसे स्वावलम्बी पुरुष को किसी भी प्रकार का कोई अभाव नहीं सता सकता।" राजा सुनकर लज्जित हुआ, बात जो खरी थी।

एक बुद्धिमान पिता ने अपने लड़के से कहा, "जाकर कुछ कमा लाओ, नहीं तो रात को भोजन नहीं मिलेगा।" लड़के के सामने अजीब परिस्थिति थी। कभी ऐसा अवसर नहीं आया था। मेहनत करने का उसे अभ्यास ही नहीं था। रोता-रोता माँ के पास गया और सारी बात कही। माँ ने एक गिन्नी दी और अपने लड़के की व्याकुलता दूर की। पिता के पूछने पर कि क्या कमा कर आए, लड़के ने जेब से गिन्नी निकाल कर पिता के हाथों पर रख दी। पिता ने कहा, "इसे कुएँ में फेंक आ।" लड़के ने ऐसा ही किया। अनुभवी पिता सब कुछ समझ गया। उसने पत्नी को बाहर भेज दिया। दूसरे दिन पिता ने लड़के को बुलाया और कहा, "जाकर कुछ कमा लाओ नहीं तो रोटी नहीं मिलेगी।" लड़का अबकी बार अपनी बहिन के पास गया और एक रुपया प्राप्त कर लिया। पिता ने इसे भी कुएँ में फिकवा दिया और अपनी लड़की को ससुराल भिजवा दिया। इसके बाद एक दिन फिर लड़के को बुला कर पिता ने अपनी पुरानी बात दुहराई। लड़का सारे दिन उदास रहा और रोता रहा। अब तो न माता थी और न बहिन, जो उसकी सहायता करते। लाचार होकर वह बाजार गया और मजदूरी खोजने लगा। एक पेटी उठाने में उसे दो आने मिले, पर उसकी गर्दन और पीठ में बुरी तरह से दर्द हो रहा था। पिता ने इस दुअन्नी को भी कुएँ में फेंक आने के लिए कहा। अब की बार लड़के ने ऐसा करने से साफ इनकार कर दिया। अनुभवी बाप सब कुछ समझ गया। उसने अपना समस्त कारोबार बेटे को सौंप दिया।

व्यक्ति के विषय में जो सत्य है, वही देश और जाति के विषय में भी सत्य है। सेमुइल स्माइल्स ने एक स्थान पर लिखा है, "जिन जातियों

में स्वावलम्बन का जोश रहा है, उन्होंने सदैव ही उन्नति की है।" वास्तव में किसी भी देश की उन्नति का इतिहास हमारे स्वावलम्बन का इतिहास है और उसके पतन की कहानी यह है कि वह किस प्रकार धीरे-धीरे हर बात में दूसरे देशों का आश्रित बनता गया। हम अपने देश को ही लें। अंग्रेजों के आने से पहले आर्थिक रूप से हमारा देश बड़ा समृद्धिशाली था। लोहा, सूत, जहाज, शक्कर, ऊन, रेशम आदि अनेक प्रकार के उद्योग-धन्धे हमारे देश में अत्यन्त विकसित थे। हमारे देश की जीवनोपयोगी सभी सामग्री देश में ही बनती थी। इस प्रकार हमारा देश पूर्ण स्वावलम्बी था। पर अंग्रेजों के आने के बाद यह बात नहीं रही। उनकी कुचालों के प्रबल झोंकों से हमारे देश का स्वावलम्बन-जीवन टूटे हुए घोंसले की तरह छिन्न-भिन्न हो गया। हमारे देश के सभी उद्योग चौपट हो गए और हम पूर्णतया परावलम्बी बना दिए गये। हम जो कपड़ा पहनते थे वह इंगलैण्ड की मिलों में बनता था, जो शक्कर उपभोग में लाते थे वह जावा, सुमात्रा से आती थी। कहने का तात्पर्य यह है कि हमारे दैनिक जीवन में काम आने वाले सभी प्रकार के पदार्थ बाहर से आते थे। उस परावलम्बन का घातक प्रभाव दो रूपों में स्पष्ट तरीके से हमारे सामने आया। एक तो हमारा सारा धन बड़ी तेज रफ्तार से विदेशों की ओर खिंचने लगा, दूसरे हमारे देशवासी उद्योग-धन्धों के क्षेत्र में दिनों-दिन अशक्त और क्षमताहीन बनते गये। हमारा पतन होता गया। देश की इसी पतनशील अवस्था का अनुभव कर गांधी जी ने स्वदेशी-आन्दोलन चलाया था। उन्होंने देश-वासियों से देश में बनी चीजों को व्यवहार में लाने की अपील की थी। देश में स्वावलम्बन की ज्योति जगाने के लिए उनके चर्खे का मधुर संगीत देश के कोने-कोने में गूँजा था। देश के स्वतन्त्रता आन्दोलन में उन्होंने चर्खे को इतना महत्त्व क्यों दिया, इसका मूल कारण यही था कि हमारा देश अपने पैरों पर खड़ा हो। उसका जीवन दूसरों की दया पर न पले।

पर आज तो हम स्वतन्त्र हैं। देश का शासन सूत्र हमारे हाथों में है। देश का भाग्य हमारी मुट्ठी में है। हमें अपने देश की उन्नति अपने हाथों करनी है। लेकिन फिर भी अनेक क्षेत्रों में हम उन्नति नहीं कर पा रहे हैं। इसका मूल कारण यह है कि स्वावलम्बन की दृष्टि से हमारे देशवासी बहुत पिछड़े हुए हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात हो अन्न समस्या ने कितना विकराल रूप धारण कर लिया। लाखों टन अनाज विदेशों से आता था। इस प्रकार हमारा जीवन, हमारा भाग्य उन देशों पर निर्भर था जो हमें अन्न भेजते हैं। यदि वे अन्न देने की कृपा न करते तो निश्चय ही देश के लाखों पुत्र भूख की ज्वाला में तड़पते रहते।

आज तो एक अन्न ही नहीं, अनेक वस्तुएँ हैं जो हमें बाहर से मँगानी पड़ती है। हमारी अमूल्य सम्पत्ति बाहर खिचती चली जा रही है और हम दरिद्र बनते जा रहे हैं। इसलिए देश को उन्नत बनाने के लिए सबसे पहली और जरूरी बात है हमारे देश का स्वावलम्बी होना। जिस दिन हम अपने समस्त उद्योगों व कला-कौशल में अपने को स्वावलम्बी बनाने के लिए सक्रिय कदम उठायेंगे, तभी हम अपने देश के भविष्य को सुनहले तारों से बाँध सकेंगे।

इसलिए राष्ट्र के भावी नागरिको उठो और स्वावलम्बन का अमृत राष्ट्र की मरणशील नसों में प्रवाहित करो। स्वावलम्बन के जादू से अपने दरिद्र, अशक्त और जर्जर देश की काया पलट कर दो।

बालों को पकड़लो तो वह तुम्हारे हाथ आ जायगा। परन्तु यदि तुम उसे आगे से निकल जाने दोगे तो फिर संसार में ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो उसे पकड़ सके।" इसीलिए समय को सबसे बड़ी दौलत समझो, समय गुजरे इससे पहले ही तुम उसे अपनी मुट्ठी में कस लो। समय की दौलत तुम्हारी बन जायगी और यह दौलत तुम्हारे जीवन की सबसे मूल्यवान् सम्पत्ति होगी। याद रखो हजार वर्ष जो बीत गए हैं और हजार वर्ष जो आने वाले हैं, इन सबसे बढ़कर वह समय है जो तुम्हारे हाथ में है।

समय तुम्हारे हाथ में रह सके। समय को तुम मुट्ठी में बाँध सको, इसका सीधा और सरल उपाय यही है कि अपने जीवन के प्रत्येक क्षण को उपयोगी काम में लगाओ और शोपेनहार के इस कथन को याद रखो कि, "आम लोग वक्त को सहज गुजार देना चाहते हैं, मनस्वी उसका सदुपयोग करना चाहते हैं।" यदि आप विद्यार्थी हैं तो अपने समय का उपयोग अध्ययन में करें। चरित्र-निर्माण के कार्यों में करें, कसरत और व्यायाम में समय दें। जीवन के जिस क्षेत्र में कदम रखें, समय रूपी सम्पत्ति का सचय करते रहें। कभी खाली और बेकार न बैठें। कुछ-न-कुछ उपयोगी कार्य करते रहें और आप देखेंगे कि आप अपने जीवन के बहुत थोड़े समय में बहुत बड़े कार्य पूरे कर लेंगे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने केवल पैंतीस वर्ष की आयु पाई थी। पर अपने जीवन के अल्प समय में उन्होंने हिन्दी-साहित्य की जो सेवा की, वह कितनी महान् और सराहनीय है। यही आदर्श जयशङ्कर 'प्रसाद' के जीवन से लिया जा सकता है। इन महापुरुषों ने अपने जीवन का एक-एक क्षण सरस्वती की उपासना में समर्पित कर दिया और हिन्दी के साथ-साथ वे अपने जीवन को अमर बना गए। उनके आदर्श को आप भी अपने जीवन में ग्रहण करें। अपने जीवन के किसी भी क्षण को व्यर्थ न जाने दें। अपने महान् लक्ष्य की सिद्धि में उनका पूरा-पूरा उपयोग करें।

आपने अब निश्चय कर लिया कि अपने समय को उपयोगी में व्यतीत करें जिससे कि आपकी अमूल्य सम्पत्ति का सफल उ हो सके। पर इसके साथ ही साथ एक बात और आवश्यक है, अपने समय को उपयोगी कार्यों में इस प्रकार व्यतीत करें कि मिलने वाली उपयोगिता आपके लिए अधिकतम हो। आपके स एक काम ही तो नहीं है। प्रतिदिन अनेक कार्य आपको पूरे करने हैं। सोना, जागना, उठना, बैठना, खाना-पीना, खेलना, कूदना, प लिखना, आदि अनेक दैनिक जीवन की क्रियाओं को पूरा करते-क आपको मालूम भी नहीं पड़ता कि रात कब हुई और दिन कब नि पर आप चाहते हैं कि आपके समय का अधिक उपयोग हो। इ लिए एक कार्य करिए। काम कुछ कठिन नहीं, बड़ा सरल है बस जो कार्य आपको पूरे करने हैं, उनके क्रम से समय को बाँट लीजि और नियम के साथ उसी क्रम से, उतने ही समय में अपने कार्यों पूरा करिए। बिना किसी क्रम और नियम से किए गए कार्य न तो ही हो पाते हैं और उनमें समय भी अधिक लगता है।

एक स्थान पर बिखरी हुई वस्तुएँ कितनी भद्दी और बुरी मालू देती हैं, परन्तु सुन्दर ढंग से व्यवस्थित और क्रम से सजी हुई वस्तुए कितनी भली और आकर्षक मालूम होती हैं। यही बात जीवन के सम्बन्ध में कही जा सकती है। समय की पाबन्दी से रहित, नियम और व्यवस्था से रहित, जीवन भी ऐसा ही अशोभनीय, काहिल और निकम्मा बन जाता है। इसलिए जीवन को नियमित और व्यवस्थित बनाना परम आवश्यक है। आपको 'प्रत्येक कार्य के लिए समय और प्रत्येक समय के लिए कार्य' नियत करना होगा। आपको एक ही कार्य नियत, और उचित समय पर करना होगा। आप देखेंगे कि आपके सभी कार्य बड़ी सरलता और सहजता से पूरे हो रहे हैं। उपयोगी कार्यों में बँटे हुए समय के कारण आपको व्यर्थ की बातों के लिए समय भी नहीं मिलेगा। व्यवस्थित ढंग से कार्य करने के कारण आपके समय में बचत भी होगी और इस बचे हुए समय का उपयोग आप अन्य उपयोगी

कार्यों में कर सकेंगे। जब आपका एक कार्य भली प्रकार समाप्त हो जाता है, तब उससे मन को बहुत उत्साह मिलता है और नया काम करने की प्रेरणा मिलती है।

अपने उपयोगी कार्यों में समय का व्यवस्थित रूप से विभाजन करने के उपरान्त एक बात और ध्यान देने योग्य है। आपको जो कार्य पूरे करने होते हैं, उनकी उपयोगिता कभी बराबर नहीं होती है। कुछ कार्य अधिक उपयोगी होते हैं, कुछ कम। जो अधिक उपयोगी कार्य हैं, उनके लिए अधिक समय की आवश्यकता होती है और जो कम उपयोगी कार्य हैं, उनके लिए कम समय देना चाहिए। एक विद्यार्थी को जितना समय अध्ययन के लिए आवश्यक होता है, उतने ही समय की आवश्यकता खेल-कूद और मनोरंजन के कार्य में नहीं होती। इसीलिए आवश्यक है कि उपयोगिता के मापदण्ड को लेकर समय का विभाजन करें। ऐसा न करके आप समय का पूरा-पूरा फायदा न उठा सकेंगे और आपकी दशा उस व्यक्ति की भाँति होगी जो भोजन, वस्त्र और मकान जैसी प्रमुख आवश्यकताओं पर धन व्यय न करके शराब, सिगरेट, सिनेमा जैसी हानिप्रद वस्तुओं पर धन व्यय करता है। उसका परिणाम भी शीघ्र ही सामने आ जाता है। इसलिए आप भी समय का अपव्यय व्यर्थ की बातों में करके उसका दुरुपयोग मत करिये।

पर आश्चर्य और दुख की बात तो यह है कि समय को बड़ी लापरवाही के साथ आज व्यर्थ के कामों में नष्ट किया जा रहा है। आज जितना समय बनाव-श्रृङ्गार करने, आडम्बर दिखलाने, गप्प हाँकने, व्यर्थ की बातचीत करने, व्यर्थ के सैर-सपाटे करने, सिनेमा आदि विविध मनोरंजन के साधनों का आनन्द लेने, बुरे साहित्य के पढ़ने, व्यर्थ के लड़ाई-झगड़े करने, इधर-उधर की मटरगस्ती करने और व्यर्थ की बातें सोचने में किया जाता है, उसका दस प्रतिशत भाग भले और उपयोगी कामों में नहीं बिताया जाता। यह कितने आश्चर्य की बात है कि समय जैसा पदार्थ जो हमारे हिस्से में सबसे कम आया

है, उसी का हम सबसे अधिक नाश करते हैं और बातों के सम्बन्ध
तो हम बड़े सतर्क और बुद्धिमान दिखाई पड़ते हैं। परन्तु समय
नष्ट करते समय हमारी समझ हमसे कोसों दूर भाग जाती है। जि
क्षणों का उपयोग कर हम अपने जीवन को आदर्श बना सकते हैं, उन्ह
क्षणों को नष्ट कर हम अपने जीवन को गर्हित, गलित और पं
बनाकर घर फूँक तमाशा देखने की कहावत चरितार्थ करते हैं। आ
चाहे मानें या न मानें, पर यह बात बिलकुल खरी है कि जिन क्षण
का आप निर्दयतापूर्वक विनाश कर रहे हैं, उन्हीं का उपभोग कर
अन्य लोग ऊँचे उठ गये हैं, महान् बन गये हैं। प्रकृति के हाथों सभी
मनुष्यों को चौबीस घण्टे मिलते हैं, न कम न ज्यादा। फिर क्या बात
है कि आप नीचे गिर रहे, हैं दूसरे ऊपर उठ रहे हैं। इसका कारण
उनका भाग्य नहीं, प्रत्युत उनके समय का उपभोग करने का ढंग है।

समय के सदुपयोग के लिए समय की पाबन्दी सबसे मुख्य और
सबसे आवश्यक बात है। अपना प्रत्येक कार्य नियत समय पर करो
और इस नियम का पालन कठोरता और दृढ़ता से करो। यही समय
की पाबन्दी है। आज जिस समय आपने भोजन किया है, कल भी इसी
समय भोजन करिये। जो समय आपने अपने मित्र से मिलने के लिए
दिया है, उसी समय पर जाकर आप उससे मिलिये। जिस नियत
समय पर आपको सभा में पहुँचना है, बिलकुल ठीक उसी समय पर
पहुँचिए। यदि आप ऐसा नहीं कर सकते तो निश्चित समझिए आप
कभी कोई कार्य पूरा नहीं कर सकते।

सोचिए और विचारिये तो सही कि यदि प्रकृति अपना कार्य नियत
समय पर न करे, सूर्य नियत समय पर न निकले और रात नियत
समय पर न हो तो संसार की क्या दशा हो? जब वर्षा नियत समय
पर नहीं होती तब कृषि को कितनी हानि पहुँचती है, यह आप स्वयं
ही सोच सकते हैं। जो लोग समय के पाबन्द नहीं होते, उनको हर कार्य
में देर हो जाती है। ऐसे लोग स्टेशन पहुँचते हैं और बड़े निराश होते
हैं, क्योंकि गाड़ी एक मिनट पहले ही रवाना हो चुकी थी। डाकखाने

पर पहुँचते हैं तो मालूम होता है कि वह एक मिनट पहले ही बन्द हो चुका है।

इस जरासी देर का परिणाम बड़ा घातक होता है। इस जरासी देर के कारण बड़ी-बड़ी दुर्घटनाएँ हो जाती हैं। इस जरासी देर के कारण बड़े-बड़े व्यापारी और व्यवसायी नष्ट हो जाते हैं। इस जरासी देर के कारण ही लोगों के जीवन के पासे पलट जाते हैं। रोम का बादशाह जलियस सीजर राजसभा में थोड़ी देर से पहुँचा। बस इसी बीच में उसके हत्यारे ब्रूटस को अच्छा अवसर मिल गया और उसने सीजर के प्राण हर लिए। नेपोलियन वाटरलू के युद्ध में इसीलिए हारा कि उसका एक सेनानायक युद्ध में केवल दो मिनट की देरी से पहुँचा और तब तक युद्ध का पासा पलट चुका था। अमेरिका के स्वतन्त्रता युद्ध में जब जनरल वाशिंगटन की सेनाएँ बढ़ी चली आ रही थीं, कर्नल राहल तब चौसर खेल रहा था। युद्ध के लिए तैयार होने में उसे कुछ देर हो गई और वह हार गया।

अवसर के अनुकूल कार्य करने पर समय के मूल्य को और भी अधिक बढ़ाया जा सकता है। जिस प्रकार अनुकूल वर्षा से कृषि अधिक सम्पन्न होती है, उसी प्रकार अनुकूल अवसर पर किया जाने वाला कार्य अधिक सम्पन्न और सुन्दर होता है। हम पढ़ने के समय पढ़ें और खेलने के समय खेलें, यह हमारे सुखी जीवन का स्वर्ण-सूत्र है। समय पर न किया जाने वाला कार्य उसी प्रकार व्यर्थ है, जैसे चिराग बुझ जाने पर तेल डालना, चोर के भाग जाने पर सावधान होना, पानी बह जाने पर बाँध बाँधना। गोस्वामी तुलसीदास जी ने कितना सुन्दर कहा है, "का वर्षा जब कृषी सुखाने।" अर्थात उस कार्य से क्या लाभ जो समय निकल जाने पर किया जाता है। फिर तो बस पश्चात्ताप के आँसू बहाना ही शेष रह जाता है। रस्किन का कहना है, "जवानी का एक भी घण्टा ऐसा नहीं जो भाग्य के विधान के लिए उपयोगी न हो। ऐसी एक भी घड़ी नहीं जाती जिसका नियत कार्य फिर से किया जा सकता हो। लोहा ठंडा हो जाने पर जैसे घन पटकने से कोई लाभ

नहीं, उसी प्रकार अवसर निकल जाने पर फिर कुछ हाथ नहीं आता।"

जो वास्तव में समय के मूल्य को पहचानते हैं और समय का सदुपयोग करना जानते हैं, वे अपना आज का कार्य कल पर कभी नहीं छोड़ते। जो काम उन्हें करना होता है। उसे तुरन्त कर डालते हैं। यदि वे आलस्यवश अपना आज का कार्य कल के लिए टाल देंगे तो निश्चय समझो उस कार्य को वे कभी नहीं पूरा कर सकेंगे। वे हमेशा काम से जी चुरायेंगे, क्योंकि काम के वचने की सवसे सरल विधि आने वाले कल की याद है। आज का थोड़ा कार्य कल और भी वड़ा वन जायगा और ज्यों-ज्यों दिन वीतते जायेंगे त्यों-त्यों उनका वोझा वढ़ता ही जायगा और वह वोझा सिर से फिर कभी नहीं उतर सकेगा। स्वेट-मार्डन ने कितना सुन्दर लिखा है, "इतिहास के पृष्ठों में इस कल की धार से कितने प्रतिभावानों का गला कट गया ? कितनों की योजनायें अधूरी रह गईं ? कितनों के निश्चय बस यों ही रह गये, कितने पछताते और हाथ मलते रह गये ? कल असमर्थता और आलस्य का द्योतक है। वहुत से लोगों ने आज के काम को कल पर छोड़ा और वे संसार में पीछे ही पड़े रहे। केवल पाँच मिनट पीछे रहने के कारण वे प्रतिद्वन्द्विता में हरा दिए गये। उनके सम्वन्धियों, उनके मित्रों तथा उनके साथियों ने उन स्थानों पर अपना अधिकार जमा लिया।"

इस प्रकार कल के लिए अपना कार्य छोड़ देने से हमारा कोई भी निश्चय पूरा नहीं हो सकता और हम अपने लक्ष्य तक कभी भी नहीं पहुँच सकते। जो काम कभी भी हो सकता है, वह कभी नहीं हो सकता। जो काम अभी होगा, वही होगा। जो शक्ति आज के काम को कल पर टालने में खर्च हो जाती है, उसी शक्ति के द्वारा आज का कार्य आज ही किया जायगा। आज का दिन हमारा है। गुजरा हुआ कल गया और आनेवाला कल अभी पैदा नहीं हुआ। अच्छी तरह किया हुआ आज हर गुजरे हुए कल को आनन्द का स्वप्न और आने वाले कल को आशा का दर्शक वना देता है। कारलायल का कहना है कि, "धीरे-धीरे' के रास्ते पर चल कर मनुष्य 'कभी नहीं' के मुकाम पर पहुँचता है।"

इसलिए महात्मा कवीर के इन वचनों पर ध्यान दो और अपने जीवन में कठोरता के साथ उनका पालन करो।

"काल्ह करे सो आज कर आज करे सो अव्व।
पल में परले होयगी, बहुरि करेगा कव्व।"

अन्त में हम ग्लेडस्टन के इन शव्दों के साथ अपनी वात समाप्त करते हैं और आशा करते हैं कि समय का सदुपयोग करके आप अपने लक्ष्य की ओर तेजी से अग्रसर होंगे।

"मेरा विश्वास करो, जवकि मैं कहता हूँ कि समय का सदुपयोग भविष्य में तुम्हें ऐसे प्रचुर लाभ का अधिकारी बनायेगा जो तुम्हारे सवसे अधिक आशापूर्ण स्वप्नों से भी अधिक होगा और उसकी वर्वादी वैसे ही तुम्हारी काली से काली कल्पनाओं से भी अधिक बौद्धिक और नैतिक पतन में तुम्हें विलीन कर देगी।"

परिश्रम की महत्ता

नवयुवकों के लिये इससे बढ़कर और कोई सन्देश नहीं हो सकता कि वे परिश्रम, परिश्रम और निरन्तर परिश्रम करे। परिश्रम ही जीवन है, परिश्रम ही शक्ति है और परिश्रम ही उत्कर्ष है। माना कि आपके पास बल है, विद्या है, बुद्धि है, अपार धन-दौलत भी है, पर आप परिश्रमी नहीं तो, समझ लीजिए आपका जीवन बड़ा दयनीय, दरिद्र और अशक्त है। सब कुछ होते हुए भी आप कुछ नहीं हैं और सब कुछ करने को इच्छा रखते हुए भी आप कुछ नहीं कर सकते। आपकी सफलता, आपका उत्कर्ष, आपकी महानता, आपका सद्भाग्य केवल आपके परिश्रम पर टिका है। लक्ष्मी, महत्ता, सम्मान और कीर्ति परिश्रमी को ही मिलती है। महाभारत में लिखा हुआ है कि सतत उद्योग करने वाला मनुष्य सुख प्राप्त करता है। उद्योग ही लक्ष्मी, लाभ और कल्याण का मूल है। परिश्रम ही जीवन का सत्य है और ईश्वर की सच्ची उपासना है।

परिश्रम ही मनुष्य जीवन का सौन्दर्य है। परिश्रम के ही द्वारा वह अपने को पूर्ण बना सकता है। परिश्रम की कठोर अग्नि में तपकर उसका व्यक्तित्व कुन्दन की तरह निखर उठता है। उसके जीवन का सारा मैल, अन्तर का सारा विष, परिश्रम की अग्नि से गल जाता है। जब वह कार्य में प्रवृत्त होता है, परिश्रम की मधुर गोद से विचरता है तो उसका हृदय स्वर्गीय और दिव्य अनुभूति से भर उठता है।

मनुष्य के सच्चे स्वरूप का विकास होता है।

परिश्रम का अमृत जिसने पी लिया है, उसके लिए फिर इस संसार में क्या असम्भव है? कठिन से कठिन कार्यों को वह चुटकियों में पूरा कर लेता है। वह चाहे तो बालू में से तेल निकाल सकता है, ऊसर में कमल खिला सकता है। रेगिस्तान की भूमि को हरी-भरी धरती में बदल सकता है। प्रकृति की इन अजेय शक्तियों पर किसने विजय पाई है? ये समुद्र पर जहाज किसने दौड़ाए? आकाश में वायुयान कहाँ से पक्षियों की तरह उड़ने लगे? ये रेल और मोटर के आविष्कार किस प्रकार हुए? साहित्य और कला के रूप में यह ज्ञान और विज्ञान का अमित भंडार कहाँ से आया? किसने ऊँचे-ऊँचे भवन, ये विशाल नगर, ये बड़े-बड़े बाँध, इन बड़ी-बड़ी मिलों का निर्माण किया? आपके पहनने के वस्त्र कहाँ से आए? जिस अन्न से आप अपना पेट भरते हैं वह सब कैसे पैदा हुआ? कहाँ तक कहें, इस सृष्टि का अणु-अणु तो उसी परिश्रम के द्वारा बना है। फिर कैसे हम परिश्रम की महत्ता को अपने शब्दों में बाँध सकते हैं। सतत परिश्रम के ही द्वारा मिश्र के मैदान में पिरामिड तैयार किए गए। सतत परिश्रम के द्वारा ही यरूशलम के विशाल और भव्य मन्दिर बने, चीन साम्राज्य की सीमा की रक्षा करने के लिए दीवाल खड़ी की गई, भव्य सौन्दर्य की प्रतिमूर्त्ति महान् कलाकृति ताजमहल का निर्माण हुआ। पहाड़ों को काटकर नए नगर बनाए गए, जंगलों को साफ कर नए देश बसाए गए। इस प्रकार परिश्रम की बदौलत इस संसार में जाने कितने अद्भुत और मानव हित के कार्य किये गए हैं।

इसीलिए यह कर्मशील संसार आप से केवल यही चाहता है कि आप निरन्तर क्रियाशील रहें। सदैव परिश्रम करें। किसान को देखो,

जेठ की चिलचिलाती धूप और जाड़ों की कड़कड़ाती ठंड में किस त
कठोर परिश्रम करता है। धुआँ उगलती बड़ी-बड़ी मिलों को देख
उनमें कार्य में चिपटे हुए लाखों श्रमिक आपकी जरूरत में काम आ
वाली अनेक वस्तुओं का निर्माण करते हैं। कल्पना करो, उस संसा
की जहाँ श्रम नहीं, मनुष्य के लिए कोई काम नहीं, तब क्या स्थिति
होगी। वह अकर्मण्य और काहिल जीवन, वह मृत्यु की तरह शान्त
जीवन, वह श्मशान की तरह भयानक जीवन, वह परिश्रम से रहित
दुनिया कैसी होगी? क्या तुम उस परिश्रम रहित मानव-जीवन को
पसन्द करोगे? क्या तुम्हें यह अच्छा लगेगा कि तुम बिलकुल निठल्ले
बैठे रहो? हाथ पैर हिलाने की जरूरत नहीं पड़े और तुम्हारी सारी
आवश्यकताएँ किसी कल्पवृक्ष द्वारा पूर्ण करदी जाएँ। इस प्रकार
जीवन कर्म-रहित बनकर निष्क्रिय, निश्चेष्ट और जड़ बन जाए।
स्पष्ट बात है, तुम्हें ऐसा जीवन किसी भी प्रकार रुचिकर न होगा।
जीवन के सच्चे उल्लास के लिए आवश्यक है कि जीवन कर्मशील हो,
कार्य-व्यस्त हो। उसकी गति बँधे हुए जल की तरह शान्त और निस्पंद
न होकर, बहती हुई सरिता की तरह प्रवाह और वेग से भरी हो।
जीवन-सरिता का यह प्रवाह और वेग कुछ नहीं आपका परिश्रम है।
परिश्रम ही आपके जीवन की गति है। जुगुनू जब तक उड़ता है, तभी
तक चमकता है। इसी प्रकार जब हमारा जीवन रुक जाता है, तब
हम अन्धकार में पड़ जाते हैं। इसलिए उठो और कर्मशील बनो,
परिश्रम और निरन्तर परिश्रम करो।

परिश्रम से जी चुराने के सामान और कोई बड़ा पाप नहीं है।
गांधी जी ने कहा है कि, "जो अपने हिस्से का काम किए बिना ही
भोजन पाते हैं, वे चोर हैं।" बाइबिल में भी कहा गया है कि, "अगर
कोई काम नहीं करता तो उसे खाना भी नहीं चाहिए।" वास्तव में
जो दूसरों की मेहनत पर जीते हैं, दूसरों के श्रम पर गुलछर्रे उड़ाते हैं,
उन जैसा पापी कौन है? वे उन भिखारियों से भी गए-बीते हैं जो
दूसरों की दया पर पलते हैं। बहुत-से भिखारी तो अपाहिज-शरीर के

कारण श्रम करने में असमर्थ होते हैं, पर जो श्रम करने में समर्थ हैं, जिनके पास श्रम के सभी साधन मौजूद हैं लेकिन फिर भी जो मेहनत न करें, श्रम से उदासीन रहें, वे मानव समाज के शरीर पर खून चूसने वाली जोंक के समान हैं, समाज के लिए उनका जीवन अभिशाप है। आज के प्रजातन्त्रीय आदर्शों के युग में समाज में ऐसे लोगों का अस्तित्व किसी भी प्रकार सहन नहीं किया जा सकता।

जो निठल्ले, काहिल और आलसी हैं, परिश्रम से दूर भागने वाले हैं, वे स्वयं दुखी रहते हैं और परिवार के लोगों को दुखी बनाते हैं। इसीलिए गांधी जी ने आलस्य को हिंसा बतलाया है। तिरुवल्लर नामक एक नीतिकार का कहना है कि, "आलस्य में दरिद्रता का वास है और जो आलस्य नहीं करते, उनके परिश्रम में कमला बसती है।" आलस्य की रफ्तार इतनी धीमी होती है कि उसे दरिद्रता बड़ी शीघ्र आ दबाती है। अगर इस दुनिया में आलस्य नहीं होता तो कौन धनी या विद्वान् नहीं बन जाता ? सिर्फ आलस्य के कारण ही यह सारी पृथ्वी नर-पशुओं और कंगालों से भरी हुई है। वास्तव में जो आलसी हैं, परिश्रम करना जिन्हें अच्छा नहीं लगता, बिना हाथ-पैर हिलाए जो जीना चाहते हैं, वे उन्नति तो क्या कर सकेंगे, हाँ नाना प्रकार के बुरे व्यसनों में फँस कर वे अपने और आश्रितों के जीवन का नाश अवश्य कर लेते हैं। अँग्रेजी में कहावत है—'Empty mind is devil's workshop' अर्थात् खाली दिमाग शैतान का घर है। पर मैं तो कहूँगा कि खाली दिमाग शैतान की मूर्त्ति है। जिसके पास करने-धरने को कुछ नहीं होता, उसे निश्चित ही शैतानियत के काम सूझेंगे। बुरी लतें उसे पड़ जायेंगी। बुरे आचरण द्वारा वह अपने समाज में गन्दगी फैलाएगा। फ्रेंकलिन का कहना है कि, "काहिली बीमारियाँ लाकर जिन्दगी को निहायत छोटी कर देती है।" वास्तव में काहिली के समान जीवन का अन्य कोई विनाशक पदार्थ नहीं है। काहिली, कायरों और दुर्बलजनों की शरणा है। यह मूर्ख और पापियों का गुण है। इसलिए कहता हूँ कि इस आलस्य जैसे महापाप से बचो। आलस्य

जैसा शत्रु जीवन के लिए और कुछ नहीं हो सकता। जो एक वार आलस्य के फँदे में फँस गया फिर उससे छुटकारा पाना बहुत कठिन है, क्योंकि आलस्य का फन्दा पहले तो मकड़ी के जाले के समान होता है, परन्तु बाद में वह लोहे की जंजीर बन जाता है।

जो आलसी होते हैं, परिश्रम से जी चुराते हैं, काम से घबराते हैं, वास्तव में बड़े कायर होते हैं। उनमें न तो आत्म-विश्वास ही होता है और न अपनी शक्ति पर भरोसा। किसी कार्य के करने की उनमें न कोई उमंग होती है और न स्फूर्ति। उत्साह और आशा उनके पास भी नहीं फटकती। फलतः पग-पग पर निराशा और असफलता के काँटे उनके पैरों में चुभते हैं। विपत्तियों और कठिनाइयों के आने पर उनका जीवन उसी प्रकार नष्ट हो जाता है, जैसे वर्षा के जल का बहाव कुछ तिनकों को अपने साथ बहा ले जाता है। ऐसे लोग भाग्य पर भरोसा रखकर हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं। ये लोग प्रायः कहते हुए सुने जाते हैं कि, "अजी साहब हमारे और आपके करने से क्या होता है, जो कुछ भाग्य में लिखा होगा वही होगा।" पर वे नहीं जानते कि मनुष्य के कर्म ही उनके भाग्य हैं। मनुष्य जो कुछ करता है, उससे ही उसके भाग्य का निर्माण होता है। फलतः परिश्रमी मनुष्य तो अपने जीवन में ही भाग्यशाली बन जाता है। परन्तु कर्महीन मनुष्य अपने धन, अपने बल और अपनी प्रतिभा को नष्ट कर जीवन भर दुर्भाग्य के आँसू बहाता रहता है। कर्मशील मनुष्य तो परिश्रम द्वारा अपनी अभिलाषित वस्तुएँ प्राप्त कर लेता है, परन्तु कर्महीन के लिए कुछ भी सम्भव नहीं है। क्योंकि—

केवल सोचने और विचारने से ही कुछ नहीं होता, केवल दवा का नाम लेने से ही रोग नहीं मिट जाता। सोचे हुए कार्य को पूरा करने के लिए परिश्रम ही आवश्यक है। एक अंग्रेज लेखक जान्सन का कथन है—"सफलता के लिए दस प्रतिशत आत्म-प्रेरणा और नव्वे प्रतिशत परिश्रम की आवश्यकता होती है।" कहावत है—"विना रोए माँ भी दूध नहीं पिलाती।" इसलिए वास्तव में महान् वनने की अभिलापा तुम्हारे हृदय में है तो अभी से परिश्रम करने की आदत अपने जीवन में डालो। आलस्य और प्रमाद के मीठे विप को त्यागो, निराशा और निरुत्साही भाव को पास मत आने दो। परिश्रम के ही द्वारा और लोग महान् वन सकते हैं और ऊँचे उठे हैं। परिश्रम के द्वारा ही तुम ऊँचे और महान् वन सकते हो। अमेरिका के प्रसिद्ध कवि लौंगफलो की एक कविता का भाव है, "महान् पुरुष जो इतनी ऊँचाई पर पहुंच गए यह वात एक क्षण में ही नहीं हो गई। जव उनके साथी निद्रा की गोद में पड़े थे, तव वे रात-रात भर परिश्रम कर रहे थे।" इसलिए भाग्य के भरोसे मत बैठो, अपने निश्चय, अपनी महत्त्वकांक्षाओं को पूरा करने के लिए कर्म करो, परिश्रम करो।

संस्कृत के एक नीतिकार ने कहा है—

> उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीर्दैवेन
> देयमिति कापुरुषा वदन्ति।
> दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या, यत्ने
> कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः॥

अर्थात्, लक्ष्मी सिंह के समान उद्योगी मनुष्य के पास आती है। भाग्य देता है यह तो कायर मनुष्य कहते हैं। इसलिए भाग्य पर भरोसा छोड़कर अपनी पूरी शक्ति से परिश्रम करो, यत्न करने पर भी यदि काम में सफलता न मिले तो देखो हमारे प्रयत्न में क्या त्रुटि रह गई है जिससे हमें सफलता नहीं मिली।

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि दिनकर ने भी इसी प्रकार के भाव अपने ओजस्वी शब्दों में व्यक्त करते हुए कहा है—

ब्रह्मा से कुछ लिखा भाग्य में मनुज नहीं लाया है।
अपना सुख, उसने अपने भुजबल से ही पाया है॥
प्रकृति नहीं डर कर झुकती है, कभी भाग्य के बल से।
सदा हारती वह मनुष्य के उद्यम से, श्रम-जल से॥
नर समाज का भाग्य एक है, वह श्रम, वह भुजबल है।
जिसके सम्मुख झुकी हुई पृथ्वी, विनती नभतल है॥

प्रत्येक कार्य पहले असम्भव प्रतीत होता है, परन्तु सतत् परिश्रम और उद्योग के द्वारा वह पूरा किया जा सकता है। कठिन से कठिन कार्य के पीछे पड़ने से वह सरल बन जाता है। असम्भव को सम्भव बनाने के लिए इतनी बुद्धि, प्रतिभा, बल और धन-दौलत की जरूरत नहीं है जितनी परिश्रम की है। बहुत से विद्यार्थी अधिक प्रतिभाशाली नहीं होते, बुद्धिमान भी अधिक नहीं होते, पढ़ने के अधिक साधन भी उनके पास नहीं होते, फिर भी व अपने से अधिक तीव्र बुद्धि वाले विद्यार्थियों से बाजी मार ले जाते हैं। इसका कारण यह है कि जब अन्य विद्यार्थी अपनी प्रतिभा के भरोसे मेहनत नहीं करते, परिश्रमी विद्यार्थी अध्ययन में जुटे रहते हैं और उन्हें उनकी मेहनत का पूरा पुरस्कार मिलता है। वास्तव में चींटी चलते-चलते सैकड़ों मील चली जाती है, परन्तु उड़ने वाला पक्षियों का राजा गरुड़ सोचता बैठा रह जाय कि हम तो क्षण भर में ही पहुँच जायेंगे, अभी जल्दी क्या है तो बैठे रहने से वह एक पग भी नहीं चल सकता, जैसा कि नीतिकार ने कहा है—

सफलता प्राप्त करना चाहता है। यदि वह अनैतिक उपायों द्वारा सफल बन भी जाता है तो अपने साथियों के बीच इस बात की डींग हाँकने में गौरव का अनुभव करता है कि उसने किस प्रकार परीक्षा-भवन में निरीक्षकों की आँख में धूल झोंककर नकल की। केवल विद्यार्थियों के लिए ही यह बात नहीं। आज तो हरेक मनुष्य के जीवन में यह भावना घर करती जा रही है कि वह कम से कम परिश्रम करे और अधिक से अधिक सुख के साधन जुटा सके। अपने परिश्रम से नहीं, वरन् धोखा-धड़ी से, अनैतिक उपायों से वे अपने जीवन-निर्वाह की समस्या को सुलझाना चाहते हैं। समाज में जो चोरी, रिश्वत आदि अनैतिक अपराध बढ़ रहे हैं, उसका मूल कारण यही है कि हम लोग परिश्रम से दूर भागते हैं, हम परिश्रम तो करना नहीं चाहते, पर अपना पेट भरना चाहते है, पढ़ने लिखने से तो जी घबराता पर पास होना चाहते है और इस प्रकार बिना कुछ किए ही सब कुछ होना चाहते हैं। इस बात को यदि हम औद व्यापक रूप में लें तो हम स्पष्ट देखेंगे कि काम न करने की इस भावना ने हमारे देश और समाज के सभी अंगों को किस प्रकार शक्तिहीन बनाया है।

जिस देश के लोग परिश्रम से दूर भागते हैं, अधिकारी वर्ग काम करना अपनी शान के खिलाफ समझते हैं उस देश की क्या दशा होगी, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। अपने देश को ही लो। स्वतन्त्र होते ही अनेक प्रकार की आर्थिक, वैज्ञानिक, सामाजिक सांस्कृतिक प्रगति की योजनाएँ बनाई गईं। सुन्दर भविष्य के बड़े-बड़े मधुर सपनों के जाल बुने गए, पर कितनी योजनाएँ सफल हुईं? । सोचने की बात है। अधिकारी वर्ग की लापरवाही और सुस्ती, जनता की परिश्रम विरोधी मनोवृत्ति, बस इन सबसे सारी योजनाएँ खटाई में पड़ गईं और देश की प्रगति का जहाँ तक सवाल है, वहाँ सर्वत्र अन्धकार, केवल अन्धकार ही रहा। देश की इसी गिरावट पर क्षुब्ध होकर हमारे प्रधानमन्त्री स्वर्गीय पण्डित जवाहर लालजी को 'मेहनत' का नारा बुलन्द करना पड़ा था। उन्होंने देश-

वासियों से अपील करते हुए कहा था, "मेहनत करो, आराम ह
है।" यह तुम्हारे देश की सबसे बड़ी शक्ति का स्वर है। यह इ
तुमसे मेहनत और सिर्फ मेहनत माँग रही है।

आप शिक्षित हैं और नवयुवक हैं, काम करने का उत्साह भी इ
में है, पर आपकी एक शिकायत है और वह भी बहुत बड़ी कि हम
पास काम तो है नहीं, हम करें क्या। पर आपकी यह शिकायत व
मन में नहीं बैठती कि आप लोग काम तो करना चाहते हैं, पर आप
काम मिलता ही नहीं। बात वास्तव में यह है कि आप लोग क
करना नहीं चाहते हैं। आप चौंकेंगे पर सचाई यही है दुनिया में का
की कमी नहीं है, काम करने वालों की कमी है, यह बात आप पर भ
लागू होती है। सत्य तो यह है कि आप लोग हाथ-पैर के श्रम क
शरीर के श्रम को अच्छी निगाहों से नहीं देखते। उसे करने में लज्ज
और सङ्कोच का अनुभव करते हैं। आप यह भी महसूस करते हैं कि
श्रमजीवी का समाज में आदर नहीं होता। फलतः समाज में आदर
प्राप्त करने के लिए आप मानसिक श्रम करना अधिक श्रेयस्कर समझते
हैं। इसीलिए किसी दस्तकारी, कला-कौशल और अन्य शारीरिक श्रम
को करने की अपेक्षा आप दफ्तरों की कुर्सियों पर बैठकर बाबू बनना
अधिक पसन्द करते हैं। पढ़-लिखकर आप शारीरिक श्रम को अपनी
शान के खिलाफ समझते हैं। गाँव के विद्यार्थी भी, जिनके पूर्व पुरुष
सदा से खेती करते आ रहे हैं, पढ़-लिखकर नौकरी की ओर दौड़ते हैं।
कृषि जैसे उत्कृष्ट धन्धे में शारीरिक श्रम करना उन्हें अच्छा नहीं
लगता है। इसके विपरीत योरोप के देशों में करोड़पति के लड़के भी
जूतों पर पालिश करने तथा समाचार-पत्र को बेचकर धनोपार्जन
करने में किसी प्रकार का सङ्कोच नहीं करते। अमेरिका आदि देशों
के लोगों का जीवन स्तर ऊँचा है, इसका यही रहस्य है।

ज्ञान, उनकी बुद्धि और प्रतिभा से उनका आदर होगा और वे उन क्षेत्रों में उन लोगों से शीघ्र और अधिक उन्नति कर जायेंगे, जो अशिक्षित हैं। इस वात को याद रखो कि प्रत्येक कार्य पवित्र है, चाहे वह शारीरिक हो अथवा वौद्धिक। मजदूरी करना भी उतना ही महान् कार्य है, जितना किसी वड़े महाकाव्य की रचना करना। इसलिए थो के शब्दों में, "यदि तुम गन्दगी से और दुनिया भर के पापों से वचना चाहो तो खूव दृढ़तापूर्वक काम करो, चाहे तुम्हारा काम अस्तवल साफ करना ही क्यों न हो" और खलील जिव्रान के ये शब्द, "तुम्हें सदा यही कहा गया है कि श्रम करना अभिशाप है और मजदूरी करना दुर्भाग्य। किन्तु यदि तुम दुख से ऊव कर अपने जगत् में आने को जंजाल और शरीर-निर्वाह को ललाट पर लिखा अभिशाप मानते हो तो मेरा भी तुमसे यह कहना है कि केवल तुम्हारे ललाट का पसीना ही तुम्हारे ललाट के अक्षरों को धो सकेगा।"

आप लोग मानव प्राणी हैं। विवेक और वुद्धि आपके पास है। पर फिर भी परिश्रम का जहाँ तक सवाल है, पशु-पक्षी गण आपके लिए आदर्श हैं। आकाश में उमड़ती हुई इन चिड़ियों को देखो, किस कदर दिन भर परिश्रम करती हुई दाना चुगती-फिरती हैं। अपने घोंसले वनाती हैं। यह मधुमक्खी ग्रीष्म काल के उष्ण दिनों में भी अपने कठोर परिश्रम द्वारा फूलों से मधु का एक-एक कण चुनकर अपने छत्ते में शहद का संचय करती है। कवि 'सुमित्रानन्दन पन्त' के शब्दों में निरन्तर परिश्रम में रत—

चींटी को देखो
देखो ना किस भाँति
काम करती वह सतत
कन-कन करके चुनती अविरत
गाय चराती
धूप खिलाती

बच्चों की निगरानी करती
लड़ती अरि से तनिक न डरती
दल के दल सेना सँवारती
घर आँगन जन पथ बुहारती
वह समस्त पृथ्वी पर निर्भय
विचरण करती श्रम में तन्मय
वह जीवन की चिनगी अक्षय
वह भी क्या देही है तिल सी
प्राणों की रिलमिल झिलमिल सी
दिनभर में वह मीलों चलती
अथक कार्य से कभी न टलती

आप जो भी कार्य करें, जैसा भी परिश्रम करें उसमें आनन्द औ उल्लास का अनुभव करें। इस प्रकार आप कार्य को सहजता और स लता से पूरा कर ही लेंगे, अपने जीवन को भी अधिक सरस औ आनन्दमय बना सकेंगे। प्रायः लोग जो कार्य करते हैं, उसे भार स्वरू समझकर करते हैं। किसी तरह काम से छुटकारा मिले, इस बला पीछा छूटे, उनकी बस यही अभिलाषा सदैव बनी रहती है। ऐसे लो अपने जीवन के प्रति बड़े उदासीन, निराश और दुखी बने रहते हैं उनके चेहरे पर कभी मुस्कान नहीं खिलती और हृदय कभी आनन्द क अनुभव नहीं करता। जैसे कोई यन्त्र चलाया जा रहा हो, उसी प्रका मशीन की तरह वे काम करते हैं। ऐसे लोग परिश्रम करते हुए भ परिश्रम के पुरस्कार से वंचित रहते हैं। फलतः यदि आप जीवन क सरस बनाना चाहते हैं, तो अपने कार्य में अधिक रुचि लीजिए। ज हम किसी कार्य को पूर्ण रुचि और उत्साह के साथ करते हैं, तब वह शुष्क से शुष्क काम भी बड़ा मधुर और सरस बन जाता है। इसलि हम जो कुछ भी कार्य करें, उसे प्रसन्नता, उत्साह और उमंग के सा करें। यदि हमारा दृष्टिकोण कार्य से अधिकाधिक आनन्द प्राप्त करना होगा तो कपड़े धोने, पत्थर तोड़ने और चक्की पीसने में भी आनन्द

प्राप्त किया जा सकता है। पं० श्रीराम शर्मा के शब्दों में, "काम करने के ढंग को मनोरंजक बनाना, यह एक व्यावहारिकता है। किसी काम को करते समय या किसी विषय को सोचते समय उदासीनता या चिन्ता के भाव मन में मत उठने दीजिए। इसे एक मनोरंजन समझिए। मन को प्रसन्न रखिए और थोड़ी-थोड़ी मुस्कराहट बनाये रहिए। मुस्कराते रहना बड़ा अच्छा गुण है। इससे मस्तिष्क के सूक्ष्म कोष जाग्रत और प्रफुल्ल रहते हैं। जो काम करें, उसमें अपने उत्तरदायित्व का पूर्ण ध्यान रखें और अपनी सारी दिनचर्या को एक मानसिक खेल के रूप में समझें।" खलील जिब्रान की निम्न पंक्तियों पर ध्यान दो—

"श्रम तो प्रेम को रूप देना है।

यदि तुम श्रम को चाह के साथ न कर सको, बल्कि बेगार टालो तो तुम्हारे लिए यही बेहतर है कि तुम अपना काम छोड़ दो और मन्दिर की सीढ़ियों के पास जा बैठो और उनके आगे हाथ पसारो, जो श्रम करने से आनन्द पाते हैं।

यदि तुम लापरवाही से रोटी सेकोगे तो वह कड़वी होगी, उसके खाने वाले को आधी भूख भी कठिनाई से मिटेगी।

यदि तुम अंगूर का रस खींचने से चिढ़ते हो तो तुम्हारी यह चिढ़ तुम्हारी बनाई मदिरा में विष घोल देगी।

और भले ही तुम ऐसा गाते हो मानो गन्धर्व गा रहे हों, फिर भी यदि तुम्हें गाने से प्रेम नहीं है तो तुम दिन के कोलाहल और रात्रि की आवाजों से मनुष्य के कान खाओगे।"

अब आप परिश्रम की महत्ता को भली-भाँति समझ गए होंगे और समझ गए होंगे कि आपके शरीर, मन, आत्मा की ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो परिश्रम से सुधरती न हो। जैसा कि एक भारतीय विचारक ने कहा है—"काम, समस्त रोगों और विकृतियों के लिए रामबाण औषधि है। काम, हमारी सब समस्याओं को हल कर सकता है। काम, हमारी सब कमजोरियों को मिटा सकता है। काम, जीवन के निर्माण करने में

अधिकाधिक मदद कर सकता है। इसलिए निरन्तर काम में लगे रहो। मन को बेकार करने का जरा भी मौका न दो। हर हालत में काम करने का अभ्यास करो। दुःखी हो तब काम करो। परेशान हो तब काम करो। निराश और उदासीन हो तब काम करो। मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़े तब काम करो। अकेले रह जाओ तब काम करो, कोई भी साथी न मिले तब काम करो। उलझनें सताने लगें तब काम करो। कठिनाइयाँ आवें तब काम करो। असफलता मिले तब काम करो। सब सम्बन्ध तोड़ दें चारों ओर अन्धकार छाया हो तब काम करो। सब सुविधाएँ प्राप्त हों तब काम करो। पैसा न हो तब काम करो। सब सुविधाएँ प्राप्त हों तब भी काम करो। धैर्य से काम करो। सोच समझ कर काम करो। हिम्मत से काम करो। योजना बनाकर काम करो। नियमित रूप से काम करो। निरन्तर काम करो। दिन-रात काम करो। खुशी-खुशी काम करो। ध्येय को सामने रखकर काम करो, काम करो, काम करो, काम ही कल्याण है।"

अनुशासन की महत्ता

अनुशासन सफल जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग है। जीवन में सच्ची शान्ति अनुशासन के ही द्वारा प्राप्त की जा सकती है। अनुशासन-विहीन जीवन उस टूटे मकान की तरह है, जिसकी अस्तव्यस्त दीवालें बिखर कर खण्डहर बन गई हैं। यह उस टूटे सितार की तरह है, जिससे सिर दर्द करने वाले निरर्थक स्वर निकल रहे हैं। यदि सच पूछा जाय तो जीवन में अनुशासन का वही महत्त्व है, जो शरीर में व्यवस्थित रुधिर संचालन का होता है। कल्पना करो अपने शरीर की उस स्थिति की, जबकि उसके सभी अंग नियंत्रण से बाहर हो जाएँ। पैर चलना बन्द कर दें। हाथ मनमानी करने लगें। आंख देखना छोड़ दें। कान सुनना पसन्द न करें, नाक और मुँह भी अपना-अपना काम करना बन्द कर दें। शरीर के अंगों की इस उच्छृङ्खलता से, शरीर की इस अव्यवस्था से, आपकी क्या दशा होगी ? एक क्षण के लिए भी जीवित रहना आपके लिए दूभर हो जायगा। बस ठीक यही भयावह स्थिति आपके उच्छृङ्खल, अनियमित और अनुशासन-विहीन जीवन की हो जाती है। अब यह जीवन चाहे व्यक्ति-विशेष का हो, समाज का हो, राष्ट्र का हो। जहां अनुशासन नहीं, वहाँ शक्ति और सुख भी नहीं।

यदि घरेलू जीवन अस्तव्यस्त रहता है। परिवार के लोग अनुशासन में नहीं रहते हैं। सभी अपनी मनमानी करते हैं। घर के बड़े आदमी के नियन्त्रण में नहीं चलते। घरेलू नियमों और मर्यादाओं का

पालन नहीं करते, तो ऐसे घर में सदा ही क्लेश मचा रहता है । बा‍
बात पर परिवार के लोग आपस में झगड़ते हैं । परिवार के लिए जि
सुख और शान्ति की, जिस प्रेम और सौजन्य की अपेक्षा होती है, व
सब घरेलू जीवन की व्यवस्था और अनुशासन-विहीनता की चोटों :
टूट कर बिखर जाती है और फिर जिस परिवार में हमेशा अशांि
रहती है, आठों पहर क्लेश मचा करता है, उसका वातावरण नरक वे
दुःख से भी बदतर होता है । उसमें पलने वाले प्राणी बड़े अनुदार, बड़े
असहिष्णु, लापरवाह, हमेशा दुःख को रोने वाले, चिड़चिड़े, कहने का
मतलब है कि हमी बुरी आदतों के शिकार होते हैं । ऐसे परिवार के
बालकों के संस्कार भी वातावरण के अनुसार बुराई और दुर्गुणों से
भरे रहते हैं । ऐसे परिवार शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं । अतएव परिवार
को विनाश से बचाने के लिए परिवार में सुख और शान्ति पैदा करने
के लिए, परिवार में प्रेम और सहयोग की गंगा बहाने के लिए, परिवार
के बालकों में सद्गुणों का विकास करने के लिए, परिवार के सदस्यों
को सच्चे अर्थों में मनुष्य बनाने के लिए, परिवार के जीवन में अनु-
शासन लाइए । पारिवारिक नियमों और मर्यादाओं का पालन करिए ।
जो छोटे हैं, उन्हें बड़ों के नियन्त्रण में चलना चाहिए, उनकी आज्ञा
माननी चाहिए । परिवार का प्रत्येक कार्य व्यवस्थित और सुचारु ढंग
से करना चाहिए । आपका पारिवारिक जीवन बड़ा शान्त और मधुर
बन जायगा और यह इसलिए आवश्यक है कि सच्चा सुखी वह है जो
अपने घर में सुखी है ।

परिवार की भाँति यदि समाज में भी अनुशासन न रहे । लोग
अपने कर्त्तव्यों का पालन न करें और अपने अधिकारों का दुरुपयोग
करें । कोई किसी की न सुने और सब अपनी ढपली अपना राग अलापें ।
समाज के लोगों पर सामाजिक मर्यादाओं और नियमों का नियन्त्रण न
रहे । जो जिसके मन आए करे तो आप ऐसे समाज की दशा का
सहज ही अनुमान लगा सकते हैं । आप शीघ्र ही देखेंगे कि ऐसे समाज
में अनाचार बढ़ रहे हैं, अनैतिक अपराध बढ़ रहे हैं । उच्छृङ्खलता बढ़

रही है। लोगों के दिल में आपस में एक-दूसरे के प्रति द्वेष, असहिष्णुता, अनुदारता की भावना भर रही है। ऐसा समाज पनप नहीं सकता। ऐसे समाज के लोग पनप नहीं सकते हैं। अतः सुन्दर सामाजिक संगठन के लिए, समाज के स्वस्थ विकास के लिए, समाज में अनुशासन आवश्यक है।

अब एक ऐसे राष्ट्र के चित्र की कल्पना करो जिसमें न तो कोई कानूनी व्यवस्था है और न वहाँ की जनता और शासक वर्ग में कोई अनुशासन है। लोगों का जीवन संकट में है, परन्तु उनकी सुरक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं है। देश में जगह-जगह अराजकता फैल रही है, विप्लव हो रहा है, लोगों के कहीं घर जल रहे हैं, कहीं दुकानें जल रही हैं, चारों तरफ अशान्ति मच रही है। लोग जिसकी 'लाठी उसकी भैंस' वाली कहावत के अनुसार अपने-अपने मन की कर रहे हैं। जो बलशाली हैं, वे खुले आम अपने से कमजोरों की गर्दनें नाप रहे हैं। सोचिए ऐसे देश की क्या दशा होगी ? उसमें फैली हुई अराजकता, अव्यवस्था, अशान्ति, क्या उस देश के शीघ्र पतन का कारण न बनेगी ? इतिहास इस बात का साक्षी है कि जो देश बहुत पहले अत्यन्त वैभवशाली और समृद्धिपूर्ण थे, उत्कर्ष के शिखर पर चढ़े हुए थे, वे कालान्तर में शीघ्र ही विनाश को प्राप्त हुए और दूसरे देशों द्वारा गुलाम बना लिए गए। कारण खोजने पर आपको बिल्कुल स्पष्ट तौर पर विदित हो जायगा कि उन देशों का यह पतन देश की जनता और उसके शासक वर्ग की अनुशासन-विहीनता थी। हम अपने ही देश को लें। जब-जब हमारे देश नें किसी एक शक्तिशाली राजा का प्रभुत्व रहा, उसके नियन्त्रण में देश के अन्य राजा रहे। देश की शक्ति इस प्रकार व्यवस्थित और संतुलित बनी रही, तब तक देश में शान्ति बनी रही। देश ने उन्नति और प्रगति की। किसी विदेशी को हमारे देश पर आँख उठाने का साहस नहीं हुआ। पर ज्योंही किसी केन्द्रीय शक्ति के अभाव में देश के विविध राज्य नियन्त्रण से बाहर हो गए। देश के राष्ट्रीय जीवन में अनुशासन नहीं रहा, त्यों ही देश का भी विनाश

प्रारम्भ हो गया, देश में अराजकता फैली, अव्यवस्था मची, बस बाहर के देशों को मौका मिला। वे हमारे देशों पर चढ़ दौड़े और बड़ी सरलता के साथ उन्होंने इस देश के, बल में अपार शक्तिशाली, धन में अपार वैभवशाली, पर अनुशासन से दरिद्र करोड़ों नर-पुंगवों को अपना गुलाम बना लिया। अंग्रेज इस देश में व्यापारी बनकर आए। पर जब उन्होंने देखा कि यहाँ का शासक वर्ग विलासिता में डूबा हुआ है। जनता के सुख-दुख का कोई ख्याल नहीं है। अधिकारी वर्ग अपनी मनमानी करता है। जनता पर मनमाने अत्याचार करता है। लोगों में अराजकता फैल रही है। पिंडारी, ठग, डाकू, जनता को लूट रहे हैं। देश की भक्ति राजपूत, सिख, मरहठा, मुसलमान आदि विविध शक्तियों के बीच बिखरी हुई है। उनमें भी परस्पर सहयोग के स्थान पर प्रतिदिन लड़ाई-झगड़े होते रहते हैं। ऐसी अराजकता और अशांति से भरे, ऐसे व्यवस्था और अनुशासन से दूर, देश पर शासन जमाने में उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई और आश्चर्य तो देखो हमारे देश की विशाल धरती पर, इसके तीस करोड़ मनुष्यों पर, यहाँ से लाखों मील दूर के एक बहुत छोटे प्रदेश के थोड़े से मनुष्यों ने अपना अधिकार जमा लिया। अंग्रेज हमारे मालिक बन गए और हम उनके गुलाम। वीरता, बल और वैभव में अंग्रेज हमारी अपेक्षा बहुत नीचे थे। परन्तु अनुशासन, दृढ़ता, व्यवस्था की दृष्टि से वे हम से बहुत बढ़े-चढ़े थे।

अब आप स्वयं सोचिए, विचारिए कि राष्ट्र की उन्नति और उत्कर्ष के लिए अनुशासन का क्या महत्व है? इतिहास ने अनुभव के रूप में आपको जो कुछ दिया है उससे प्रेरणा और शिक्षा लो। ऐसा न हो कि इतिहास की घटनाओं की फिर पुनरावृत्ति हो। आज हमारा देश स्वतन्त्र है। देश का शासन एक केन्द्रीय शक्ति के हाथ में है और वह नियन्त्रित और व्यवस्थित रूप से प्रान्तीय शक्तियों के हाथों में बँटा हुआ है। इस प्रकार हमारे देश का शासन प्रजातन्त्रीय आदर्शों पर चल रहा है। देश के प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार मिले हुए हैं। वह जिस धर्म की चाहे स्वतन्त्रतापूर्वक उपासना कर सकता है। नाग-

को, देश की शक्ति को, देश के सङ्गठन को दृढ़ और मजबूत बनाओ।

समाज, परिवार और राष्ट्र की बात नहीं, मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अनुशासन की महती आवश्यकता है। आप विद्यार्थी हैं, आप अपनी पाठशाला की ही बात सोचिए। क्या बिना अनुशासन के कोई शिक्षा-संस्था चल सकती है ? विद्या मन्दिर के यदि सभी कार्य बिना किसी नियम और व्यवस्था के होने लगें तो क्या पढ़ाई ठीक प्रकार से हो सकेगी ? विद्यालय खुलने का समय सुबह सात बजे का है, और विद्यार्थी आठ बजे पहुँच रहे हैं। मन में आया तो कक्षा में बैठ गए नहीं तो कक्षा के बाहर ही चहल कदमी करने लगे। अध्यापकों का उन्हें भय नहीं है। कहीं शोर मच रहा है तो कहीं कुछ विद्यार्थी आपस में लड़-झगड़ रहे हैं। अध्यापक पढ़ा रहे हैं और लड़के हँस रहे हैं, बस समझ लीजिए अनुशासन-रहित विद्यालयों की क्या दशा होती है। इसीलिए अनुशासन तो विद्या मन्दिर की जान है। बिना अनुशासन के वास्तव में शिक्षण-संस्था चल ही नहीं सकती। यह तो वह नर्सरी स्थान है, जहां देश के भावी कर्णधारों के प्रारम्भिक जीवन का स्वस्थ और सुन्दर नैतिक आदर्शों से निर्माण किया जाता है। यह सब कुछ तभी संभव है, जबकि आज का छात्र का अनुशासन के महत्व को भली-भाँति समझता हुआ संयमी और व्यवस्थित जीवन द्वारा विद्या-अध्ययन करे। आज के विद्यार्थी का कर्त्तव्य है कि वह कक्षा में बैठते हुए अनुशासन का पूरा ध्यान रखे। उसे अपने सहपाठियों के साथ शान्ति-पूर्ण और व्यवस्थित ढंग से कक्षा में उचित स्थान पर बैठना चाहिए। कक्षा में बातचीत करते हुए या अन्य किसी भी प्रकार से कक्षा की शान्ति भंग नहीं करनी चाहिए। अध्यापकों के नियन्त्रण में रहना और उनकी प्रत्येक आज्ञा का भली-भाँति पालन करना भी अनुशासन प्रिय छात्रों के विद्यार्थी जीवन का प्रमुख अङ्ग है। जो झूठे अभिमान वस अपने अध्यापकों के अनुशासन में नहीं रहते, कक्षा में उचित और

व्यवस्थित ढंग से नहीं बैठते तथा अध्ययन के समय गड़बड़ी पैदा करते हैं वे निश्चय ही विद्या-मन्दिर का अनुशासन भंग करते हैं।

कक्षा के अतिरिक्त प्रार्थना-स्थल, खेल के मैदान एवं विद्यालय के अन्य स्थानों पर भी अनुशासन रखना परमावश्यक है। प्रार्थना-स्थल की ओर चलें तो सिपाही की भाँति कतार बाँध कर चलें। वहाँ पहुँच कर व्यवस्थित ढङ्ग से शान्तिपूर्वक खड़े हों।

यह तो हुई आपके विद्यालय की बात, अब तनिक खेल के मैदान की ओर भी देखिए। यदि खिलाड़ियों का एक दल नियम और व्यवस्था से नहीं खेले, अपने नायक के नियन्त्रण में नहीं रहे और अपनी ही मनमानी करने लगे तथा न्याय कर्त्ता के संकेतों पर कार्य करना बन्द कर दे तो निश्चय समझो यह दल कुछ क्षणों में अपने विरोधी दल द्वारा पराजित कर दिया जायगा। चाहे हारने वाले दल के खिलाड़ी खेलने में अधिक चतुर और कुशल ही क्यों न हो। यह अनुशासन से रहित खिलाड़ियों का दल तो खुद तो हारेगा ही, खेल के आनन्द को भी किरकिरा बना देगा। क्योंकि खेल से गम्भीरता जाती रहेगी और वह सिर्फ एक मजाक बन कर रह जायगा।

पढ़ लिखकर आप जीवन के विविध क्षेत्रों से प्रवेश करेंगे। कोई डॉक्टर बनेगा, कोई इंजीनियर, कोई लेखक, कोई व्यापारी, कोई वकील और कोई आफिस की कुर्सी पर बैठेगा। आप निश्चित रूप से अनुभव करेंगे कि सब जगह अनुशासन की महती आवश्यकता है। एक व्यापारी नियम और व्यवस्था से कार्य नहीं करता, उत्तरदायित्व और गम्भीरता से काम नहीं करता तो वह शीघ्र ही घाटा उठायेगा। इसी प्रकार एक आफिस में जहाँ कोई नियम और व्यवस्था न होने से अनुशासन नहीं है, काम मेज पर पड़ा है, पर काम करने वालों का पता नहीं। महत्वपूर्ण फायलें गायब हैं और अधिकारियों को पता तक नहीं है। महीनों का कार्य करने को पड़ा हुआ है पर जिनको करना है उन्हें उनकी चिन्ता ही नहीं है, तो सोच लीजिए उस आफिस में रत्ती-भर भी काम नहीं होगा। जो होगा वह बिल्कुल व्यर्थ, अधूरा

और लापरवाही से भरा होगा। हमारे अधिकांश कार्यालयों की, जहाँ कि देश का शासन-कार्य होता है यही दशा है। एक दिन के काम में महीनों लग जाते हैं और फिर भी वह उस प्रकार नहीं होता जिस प्रकार कि उसे होना चाहिए। यही कारण है कि हमारे देश के शासन-यन्त्र की गति कछुए की चाल से भी अधिक धीमी है। राष्ट्र-निर्माण की योजनाओं पर शीघ्र अमल नहीं हो पाता और जव समय निकल जाता है, तव वे प्रकाश में आती हैं।

जो वात कार्यालयों और व्यापारों के सम्वन्ध में कही जा सकती है, वही वात किसी व्यवसाय के लिए भी उतनी ही सत्य है। विना अनुशासन के, विना नियम और व्यवस्था के किसी भी व्यवसाय में सफलता पाना असम्भव है, फिर चाहे वह राजमहलों से लेकर झोंपड़ियों तक में ही किए जाने वाला कार्य क्यों न हो। वास्तव में कोई भी वड़ा उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य विना अनुशासन के नहीं किया जा सकता। संसार में जितने भी महान् कार्य हुए हैं, उनके पीछे अवश्य व्यवस्थित योजना और निश्चित इरादे थे। उनको पूरा करने वाले अवश्य अनुशासन के महत्व को समझने वाले थे। उन्होंने अपना कार्य नियम और व्यवस्था, अनुशासन और संयम से किया था। जिन्होंने ऐसा नहीं किया, उनके कार्य पूरे नहीं हुए। वे वीच में ही असफल हो गए।

संसार के देशों में जो अपने उद्देश्य को पाने के लिए वड़े-वड़े आन्दोलन हुए, वड़ी-वड़ी राज्यक्रांतियाँ हुईं, वे सव अनुशासन के कारण सफल हुईं और अनुशासन न होने से असफल हुईं। फ्रांस की राज्य-क्रांति, रूस की वालशेविक क्रांति, चीन का जनमुक्ति आन्दोलन और हमारे देश का स्वतन्त्रता आन्दोलन, ये सव क्यों सफल हुए? केवल इसलिए कि ये आन्दोलन अनुशासन की शक्ति पर टिके हुए थे। जो नेतृत्वकारी शक्तियाँ थीं, उन्होंने जनता को अनुशासन की डोर में वाँध रखा था। इसलिए उन आन्दोलनों की शक्ति विखरने नहीं पाई, वह सगठित और केन्द्रित रही, इसीलिए वे सफल रहे, विजयी वने।

सन् १८५७ में हमारे देश का जो पहला मुक्ति संग्राम छिड़ा था उसके असफल होने का मुख्य कारण आन्दोलनकारियों का अनुशासन-विहीन होना था। निश्चित योजना से पहिले ही मुक्ति-आन्दोलन शुरू हो गया, फिर वह एक साथ सारे देश में नहीं फैला। कहीं हलका-सा विस्फोट हुआ, तो कहीं आग की छोटी-सी लपट चमकी। वस अंग्रेजों द्वारा वह सरलतापूर्वक वुझादी गई।

अनुशासन की वात पर विचार करते समय यदि आप प्रकृति की ओर दृष्टिपात करें तो आप देखेंगे कि यह प्रकृति स्वत: अनुशासन में बँधी हुई है। सूर्य और चन्द्रमा निश्चित और नियमित रूप से ही कार्य करते हैं। यही कारण है कि दिन और रात विल्कुल ठीक समय पर ही परिचालित होते हैं। प्रकृति के इन क्रियाकलापों में तनिक भी अनुशासन-हीनता और अनियमितता दृष्टिगत नहीं होती। एक अनुशासन-विहीन अनियमित प्रकृति की कल्पना मात्र से ही हमारा हृदय सिहर उठता है। इसमें सन्देह नहीं कि जिस दिन प्रकृति उच्छृङ्खल वन जायगी, प्रकृति के अटल नियमों में अनियमितता का समावेश हो जायेगा, उसी दिन संसार में प्रलय मच सकती है।

अत: जिस प्रकार आप प्रकृति में एकता, नियम-वद्धता और अनुशासन पाते हैं, उसी प्रकार आपको भी अपने जीवन में अनुशासन को अपनाने की आवश्यकता है। आपके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास अनुशासन के द्वारा ही सम्भव हो सकेगा। अनुशासन के अमोघ अस्त्र द्वारा कठिन से कठिन कार्य भी सहज और सरल वन जाते हैं, क्योंकि एक नियमित और व्यवस्थित रूप से कार्य करने वाला व्यक्ति जितनी शीघ्रता और उत्तमता से कार्य कर सकता है, एक अनुशासन-हीन व्यक्ति द्वारा यह सव सम्भव नहीं है। क्योंकि अनुशासन-हीन अवस्था में उसकी सारी शक्तियाँ विखरी हुई रहती हैं। यदि आपका जीवन अनुशासित है तो लोग आप पर विश्वास करेंगे। आपको जिम्मेदार व्यक्ति समझेंगे। कोई भी महत्वपूर्ण और उत्तरदायित्व से भरे कार्य आपको सौंपते हुए वे तनिक भी सङ्कोच नहीं करेंगे। आपके कार्यों में

लोग आपके सहयोगी बनेंगे और इस प्रकार आप बड़ी शीघ्रता लोकप्रिय बन जायेंगे।

जीवन को अनुशासन के साँचे में ढालने के लिए सबसे प्रमुख औ आवश्यक बात तो यह है कि आपको अपने मन और विचारों पर पू अनुशासन रखना चाहिए। क्योंकि यह एक सनातन रहस्य है कि मनु‍ को बनाने वाला उसका मन ही है। मन के विचार, मन की भावनाए ही मनुष्य के चरित्र को बनाती हैं, इसीलिए अपने विचारों को, अपनं भावनाओं को भी सदैव पवित्र रखो, उन्हें चंचल और अस्थिर मत हो‍ दो, आपका जीवन भी पवित्र, स्थिर और दृढ़ रहेगा। यदि आप अपने मन के क्षणिक उत्तेजनात्मक वासनाओं व विचारों पर जो आपके चरित्र के सबसे अधिक प्रभावशाली शत्रु हैं, कड़ा अंकुश नहीं लगायेंगे तो ये सब दुर्गुण आपके चरित्र में घुन की तरह लग जायेंगे और वे आपके जीवन को चौपट कर देंगे। मन के गन्दे विचार, वासनाएँ, बुरी इच्छाएँ कभी आपको ऊँचा नहीं उठने देंगी। यदि आपका मन आपके वश में नहीं है तो यह निश्चित है कि बुरी प्रवृत्तियों, गन्दी आदतों, अपवित्र आचरणों और बुरे व्यवहार से आप अपने को मनुष्यता से नीचे गिरा लेंगे। आप अधिक स्वार्थी, क्रोधी, लोभी, अनुदार और असहिष्णु बन जायेंगे। किसी के मुख से तनिक अप्रिय बात सुनने पर आप अपने मन को नहीं रोक सकेंगे और क्रोध के वशीभूत होकर आप उनसे लड़ने को तैयार हो जायेंगे। इसलिए इन बुरी प्रवृत्तियों के विष से अपने मन को बचाने के लिए अपने मन पर शासन करो, क्योंकि जिस प्रकार टूटे छप्पर में वर्षा का जल घुस आता है, उसी प्रकार चंचल मन में बुरी वासनाओं का उदय होता है।

आपको अपने मन पर उसी प्रकार अंकुश रखना चाहिए, जिस प्रकार एक कुशल सेनानायक अपनी सेना के प्रत्येक अंग पर रखता है। आप तनिक विचार तो करिए कि एक सेना की विजय का कारण उसका अनुशासन ही तो होता है। अनुशासन-विहीन सेना तो निस्तेज, निष्प्राण

और निर्बल समझी जाती है। यदि सेना के सिपाही सैनिक नियमों का उल्लंघन कर मनमानी करने लगें, अधिकारियों का कहना न मानें तो ऐसी सेना की क्या गति होगी ? ऐसे अनुशासन-विहीन विशाल सैनिक समुदाय को तो मुट्ठी भर सुसंगठित, व्यवस्थित और अनुशासन-बद्ध सैनिक परास्त कर डालेंगे। इतिहास इस बात का साक्षी है कि वख्तियार खिलजी ने केवल अठारह घुड़सवारों के वल पर सारे बंगाल को जीत लिया था। वावर तो अपने थोड़े सैनिकों के वल पर सारे हिन्दुस्तान का वादशाह वन बैठा था। शिवाजी ने मुट्ठी भर मरहठों को लेकर औरंगजेव जैसे प्रबल शत्रु को नाकों चने चववा दिये थे।

मन पर अंकुश लगाने की एक और कला है, मन को एकाग्र बनाना। मन की समस्त चित्तवृत्तियों को केन्द्रित कर आप पूर्ण मनोयोग के साथ अपने कार्यों में लीन हो जाइए। इस प्रकार आपके मन की विखरी हुई शक्तियाँ सिमट कर एक स्थान पर केन्द्रित हो जायेंगी और मन की इस सन्तुलित, संगठित और व्यवस्थित शक्ति द्वारा आप अपने कार्यों को बड़ी सरलतापूर्वक समाप्त कर लेंगे। अध्ययन करते समय यदि आपका मन चंचल रहेगा, उसे आप एकाग्र नहीं वनाये रहेंगे, पुस्तक के पन्ने पलटते समय मन द्वारा वागों की सैर करेंगे। कक्षा में पढ़ते समय यदि आपका मन सिनेमा के चित्रपटों पर चक्कर काट रहा होगा, तव फिर बतलाइए क्या आप अध्ययन कर सकेंगे ? क्या आपको अपना पाठ याद हो सकेगा ? यदि नहीं तो अपने अस्थिर मन को एकाग्र वनाइये। लक्ष्य वेध के लिए एकाग्र मन की आवश्यकता है, महाभारत की एक घटना इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

द्रोणाचार्य ने एक दिन पाण्डवों और कौरवों की धनुर्विद्या की परीक्षा ली। वे अपने सभी शिष्यों को एक वनस्थली में ले गए और वहाँ एक वृक्ष के ऊपर बैठी हुई चिड़िया की आँखों की पुतली को बेधने के लिए उन्होंने शिष्यों से कहा। लक्ष्य-वेध करने से पहले उन्होंने सभी से एक प्रश्न किया "तुम्हें क्या दिखाई देता है ?" उत्तर में सभी ने कहा मुझे जंगल और उसके सभी पेड़, चिड़िया और उसकी आँखें दीख

रही हैं। पर जब अर्जुन से यही प्रश्न पूछा गया तो उन्होंने उत्तर दिया, "गुरुदेव मुझे तो आँखों को पुतली के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं दिखाई देता।" आचार्य ने अर्जुन की प्रशंसा की, उसे आशीर्वाद दिया और लक्ष्य वेध के लिए कहा। सभी ने देखा अर्जुन इस परीक्षा में सफल रहे।

मन को अनुशासित बनाने के साथ-साथ वाणी को भी संयम में रखना आवश्यक है। वाणी से निकले हुए शब्दों के द्वारा ही आपके चरित्र की व्याख्या दूसरों के सामने होती है। अतः बोलने से पहिले आपको यह भली-भाँति सोच-विचार लेना चाहिए कि आप कोई अनुचित बात तो कहने नहीं जा रहे हैं अथवा किसी की व्यर्थ आलोचना से तो अपने शब्दों को नहीं रंग रहे हैं। इसके अतिरिक्त आपको सदैव अवसर के अनुकूल अपनी वाणी का प्रयोग करना चाहिए। अपनी जीभ को वश में न रखकर व्यर्थ की बातें करना निश्चय ही आपके चरित्र की बहुत बड़ी कमजोरी है, अनुशासन-हीनता है।

मन, विचार और वाणी पर नियन्त्रण रखने पर आप अपने व्यावहारिक जीवन को भी अधिक व्यवस्थित और अनुशासनमय बना सकते हैं। वास्तव में अनुशासन आत्म-नियन्त्रण पर आधारित है। बिना किसी बाहरी भय या दबाव के मर्यादानुकूल नियमबद्धता से कार्य करना ही सच्चा अनुशासन है। एक अंग्रेज लेखक का कथन है 'Dicsipline comes from Within', अर्थात् अनुशासन भीतर से आता है। यदि आपके जीवन का अंतरंग अनुशासनमय होगा तो बहिरंग भी अनुशासनमय होगा। यदि आपके विचार पवित्र होंगे, मन शुद्ध होगा तो आपके कार्य भी पवित्र होंगे और व्यवहार भी सुन्दर होगा। यदि आपका मन सन्तुलित होगा, नियमबद्ध होगा तो आपके कार्य भी सन्तुलित, व्यवस्थित और नियमबद्ध रहेंगे।

ईश्वर ने मनुष्य को सोचने और विचारने की बुद्धि दी है, इसलिए उसे किसी भी कार्य को करने से पूर्व भली-भाँति सोच-विचार लेना चाहिए कि कौन-सा कार्य अच्छा है तथा कौन-सा कार्य बुरा है। उस

कार्य को पूरा करने के लिए आप एक नियमबद्ध योजना बना लीजिए और तब अपनी प्रतिभा, अपनी बुद्धि, अपने साधन और परिश्रम को व्यवस्थित ढंग से उसमें लगा दीजिए, आप कभी असफल न होंगे। यदि आप किसी नियमबद्ध योजना को लेकर कार्य नहीं करते तो उस कार्य को पूरा करने में लगी हुई आपकी शक्तियों का अधिक अपव्यय होगा और आप अपनी प्रतिभा, साधन और समय का पूरा उपयोग नहीं कर सकेंगे। विना किसी योजना को लेकर किया गया परिश्रम भी व्यर्थ जाता है।

किसी कार्य से पहिले नियमबद्ध योजना बनाने के बाद उसे आप व्यवस्थित ढंग और अनुशासन के साथ करिए। ऐसा न हो कि जब मन में आवे तब काम कर लिया, जब मन में आया नहीं किया। कभी आपकी रुचि हुई तो दिन भर उसी कार्य को करते रहे, कभी 'मूड' नहीं जमा तो हफ्तों निकल गए। इस प्रकार कार्य को करना उसे जान-बूझकर मुश्किल और सिर दर्द बनाना है। वास्तव में अपने व्यावहारिक जीवन को व्यवस्थित और अनुशासनपूर्ण बनाना बहुत आवश्यक है। आप जो भी कार्य करें, नियम एवं व्यवस्था से करें। नियत समय पर उठें, नियत समय पर पढ़ने जायँ या दैनिक जीवन के अन्य क्रिया-कलापों को पूरा करें। नियत समय पर खेलें और नियत समय पर पढ़ें। कहने का मतलब है कि आप जो कुछ करें, नियम और अनुशासन के साथ करें। आपका कमरा जिसमें आप पढ़ते हैं, देखिए उसमें कहीं कूड़ा तो नहीं डला, वस्तुएँ बेतरतीब तो नहीं हैं, यदि ऐसा है तो आपका कमरा जितना बुरा होगा, उतनी ही बुराई वह आपके चरित्र को प्रकट करेगा। वह सिद्ध कर देगा कि आप कितने लापरवाह, अनियमित और उच्छृङ्खल हैं। स्कूल जाना है, पर हिन्दी की पुस्तक नहीं मिल रही, जाने कहाँ रखी है। बहुत खोजने पर वह आपको मेज के नीचे पड़ी मिलती है, पैन में स्याही भरनी है पर दवात

का पता नहीं है। इस प्रकार आप अपनी ही लापरवाही से अपने समय और श्रम का अपव्यय करते हैं। अपने जीवन में अनियमितता की आदत डालते हैं। यदि आप कमरे की सभी वस्तुओं को एक तरीके से उचित स्थान पर सजाकर रखें, पुस्तकों को ठीक ढङ्ग से जमाकर रखें, फैले हुए कपड़ों को ट्रन्क में रखें, पैन और दवात को उनके उचित स्थान पर रखें तो आपको न तो स्कूल जाने को देरी होगी और न किसी वस्तु को खोजने के लिए व्यर्थ ही श्रम करना पड़ेगा। आपका कमरा भी बड़ा आकर्षक और सुन्दर मालूम देगा।

जो वात कमरे के लिए कही गई है, वही वात आपके जीवन के विषय में भी कही जा सकती है। जिस प्रकार कमरे की वस्तुओं को व्यवस्थित ढङ्ग से सजाकर आप उसे सुन्दर और आकर्षक रूप प्रदान कर सकते हैं, उसी प्रकार जीवन में अनुशासन और व्यवस्था लाकर आप अपने व्यक्तित्व को, अपने जीवन को अधिक सुन्दर, अधिक प्रभावशाली और अधिक शानदार वना सकते है। 'सुन्दर जीवन से वढ़कर और कोई सजीव कलाकृति नहीं है और इस कलाकृति की रचना अनुशासन की तूलिका से की जा सकती है।'

शिष्टाचार

जार्ज मैरियम के शब्दों में, "जरा सोचो तुम्हारा सुख कितना ज्यादा इस बात पर निर्भर है कि दूसरे तुमसे कैसे पेश आते हैं। इस बात को घुमाकर देखो और याद रखो कि उसी तरह तुम भी अपने व्यवहार से लोगों को सुखी या दुखी बना रहे हो।" इसलिए ऐसा व्यवहार करो, जिससे दूसरे लोग प्रसन्नता अनुभव करें। ऐसा व्यवहार करो, जिससे तुम सु-नागरिक माने जा सको। ऐसा व्यवहार करो, जिससे तुम सभ्य और सुसंस्कृत मालूम पड़ो। ऐसा व्यवहार करो, जिससे तुम्हारे हृदय की उदारता, विशालता और शालीनता टपकती हो। शिष्ट समाज के द्वारा किए जाने वाला यह व्यवहार ही शिष्टाचार है। यह शिष्टाचार मनुष्य और समाज की सभ्यता का दिग्दर्शक है, क्योंकि मनुष्य के व्यवहार से ही उसकी संस्कृति और उसके शील का पता चलता है।

साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है, उसी प्रकार व्यवहार को भी अपने चरित्र का दर्पण कह सकते हैं। मनुष्य जैसा दैनिक जीवन व्यतीत करता है, उसमें उसका चरित्र ही व्यक्त होता है। हमारे रहन-सहन के ढंग में, वेश-भूषा के आकार-प्रकार में, वार्त्तालाप करने में, हँसने और रोने की रीति में, उठने और बैठने की शैली में हम अपने चरित्र का ही प्रदर्शन करते हैं। इसलिए जब हम वार्त्तालाप करते हैं, शिष्ट आचरण करते हैं, समाज के अन्य लोगों से प्रीति और सौजन्य

का व्यवहार रखते हैं, तब लोग हमारे स्वभाव की प्रशंसा करते हैं, हमारे चरित्र के गुण गाते हैं, हमें अच्छा और भला आदमी समझते हैं। इस प्रकार शिष्ट आचरण द्वारा, मधुर व्यवहार द्वारा हम लोगों की निगाहों में ऊँचा उठते हैं। उनके प्रिय बनते हैं। उनके दिलों में अपने लिए घर बनाते हैं। यही हमारा बड़प्पन है। वास्तव में बड़प्पन इस बात पर नहीं टिका हुआ है कि धन-दौलत से, समाज में हम अन्य लोगों से कितने बढ़े-चढ़े हैं? विद्या और बुद्धि हम में कितनी है? सच्चा बड़प्पन तो इस बात में है कि समाज की श्रद्धा और प्रेम को हमने किस हद तक प्राप्त किया है। धन-दौलत वाला पुरुष, बल-विद्या वाला व्यक्ति, यदि उसका व्यवहार समाज के प्रति शिष्ट नहीं तो कभी वह समाज में सच्ची प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त कर सकेगा। लोग भय के वशीभूत हो मुँह पर भले ही उनकी प्रशंसा करदें, परन्तु पीठ पीछे हमेशा उनकी बुराई करते हैं। परन्तु जो शिष्ट आचार वाला है, समाज के प्रति प्रेम और सहिष्णुता का वर्त्ताव करता है, वह आगे-पीछे सभी समय समाज में प्रतिष्ठित होता है।

ऊपर जो बात कही है, वह तो है व्यक्तिगत शिष्टाचार से सम्बन्धित है परन्तु जब तक शिष्टाचार जातीय विशेषता का रूप नहीं ग्रहण कर लेता, तब तक वह जाति की सभ्यता का उत्कर्ष बढ़ाने वाला नहीं बन सकता। आप किसी भी देश में जाएँ और वहाँ के लोग आपके साथ अच्छा वर्त्ताव न करें। आपको देखकर आपका मजाक बनाएं, बजाय आपके साथ मिष्ठ संभाषण करने के आपको तंग करें तो ऐसे देश के प्रति आपकी धारणा अच्छी नहीं हो सकती। आप ऐसे देश को नितान्त असभ्य और जंगली बतलायेंगे। इसके विपरीत किसी अन्य देश में आपके पहुँचने पर लोग बढ़े प्रेम से आपसे मिलते हैं। आपकी प्रत्येक सुविधा का ध्यान रखते है तो ऐसे देश-वासियों से मिलकर आप बड़े प्रसन्न होंगे। उस देश को आप बड़ा सभ्य और सुसंस्कृत मानेंगे। इस प्रकार शिष्टाचार ही किसी देश की सभ्यता और संस्कृति का मापदण्ड है।

शिष्टाचार चाहे व्यक्तिगत हो अथवा जातीय, है बड़ा ही उपयोगी। शिष्टाचार द्वारा हम कठोर से कठोर हृदय को भी अपना बना लेते हैं लोगों पर अपना इतना सुन्दर प्रभाव छोड़ते हैं कि उन्हें हमारे विषय में यह कहना ही पड़ता है कि आप से मिलकर सचमुच बड़ी प्रसन्नता हुई। शिष्टाचारी मनुष्य का मधुर स्वभाव तो वास्तव में शीतल जल के समान है, जिसके स्पर्श से आग भी शान्त हो जाती है। शिष्टाचार का महत्त्व स्पष्ट करते हुए स्वेटमार्डेन ने लिखा है,—"आँधी बड़ी शक्ति-सम्पन्न है। उसके उठते ही समुद्र में तूफान आता है, जहाजों के टुकड़े हो जाते हैं, मनुष्य डरकर घरों में घुस जाते हैं, पशु-पक्षी जान बचाते फिरते हैं, यहाँ तक कि मजबूत मकानों की नींवें तक हिल जाती हैं। किन्तु बसन्त की मन्द वायु से उसकी तुलना करिए। उसके आते ही देखो, नदियाँ, तालाब, जङ्गल, खेत सभी मुस्कराने लगे। बगीचों में तरह-तरह के फूल खिल उठे, रंग-बिरंगे फूलों के गलीचे बिछ गए, सुगन्ध से चारों ओर का वातावरण भर गया। भौंरे अपना सुरीला राग छेड़ने लगे, पक्षीगण कुँजों में जाकर विहार करने लगे। चारों ओर चैन और आनन्द की बंशी बजने लगी। सभी का जीवन सुखदाई हो गया।" बस समझ लीजिए शिष्टाचार तो बसंत की वायु के समान है। अशिष्ट जीवन आँधी के समान है।

स्वेट मार्डेन आगे लिखते हैं—"सदाचार और शिष्टाचार वाले बिना धन के ही संसार की यात्रा करते हैं। उनके लिए सब दरवाजे खुले रहते हैं। वे बिना खरीदे ही सब आनन्द लूटते हैं। सूर्य के उजाले के समान प्रत्येक घर उनके स्वागत के लिए तैयार रहता है। जिस झोंपड़े में वे ठहरेंगे, वहीं आनन्द की लहरें उठने लगेंगी। जिस समाज में वे प्रवेश करेंगे, उसी के रत्न हो जायेंगे। जिस देश में वे अपना कदम रखेंगे, वही देश अपने को भाग्यवान समझने लगेगा। आखिर वे सब जगह प्रकाश, आनन्द और उजेला ही लेकर तो जाते हैं। वे सब की भलाई चाहते हैं और ईर्ष्या तथा द्वेष का समूल नाश कर देते हैं। क्या आप नहीं जानते कि शहद से लिपटे हुए मनुष्य को मधु मक्खियाँ

नहीं काटतीं। इस प्रकार कोई व्यक्ति शिष्टाचार से होने वाले भारी लाभ का अनुमान नहीं कर सकता। शिष्टाचार ही हमें प्रसन्न अथवा रुष्ट करता है। वही हमें ऊपर उठाता या नीचे गिराता है। वही हमें जंगली या सभ्य बनाता है। वायुमण्डल की हवा के समान ही उसका हमारे तथा हमारे पड़ौसियों पर प्रभाव पड़ता है। शक्ति जिस काम को करने में असमर्थ होती जान पड़ती है, शिष्टाचार उसे हँसते-हँसते करा लेता है। समाज की सुन्दर शृङ्खला को व्यवस्थित रखने के लिए मुस्कराता हुआ शासक चाहिए। वह सारा कलह दूर कर देता है और सब एक-दूसरे को अपना समझने लगते हैं। लोगों को प्रसन्न करने की कला ही दुनिया में आगे बढ़ने की कुँजी है।" शिष्टाचार द्वारा आप भी इस कुँजी को प्राप्त कर दुनिया में आगे बढ़ सकते हैं।

वार्त्तालाप करने का ढङ्ग शिष्टाचार का प्रमुख अंग है। यह मनुष्य के स्वाभाविक शील का द्योतक है। इसके लिए सबसे आवश्यक बात है—मधुर वचन का बोलना।

"कागा का को लेत है, कोकिल का को देय,
मीठे वचन सुनाइ के, जग वश में कर लेय॥"

कौए और कोयल देखने में एक ही समान होते हैं, पर कोयल को लोग प्यार करते हैं, कौए का तिरस्कार, इसका कारण कौए की कर्कश और कोयल की मधुर वाणी है। इसीलिए मधुर भाषी लोग लोगों को प्रिय होते हैं और कटुभाषी अप्रिय। एक अरबी कहावत है कि, "वाणी से आदमी की औकात और बुद्धि का पता चलता है।" बात बिलकुल ठीक है। यदि आप असभ्य तरीके से बात करें, गाली देकर बात करें, अशिष्टतापूर्वक बात करें तो लोग आपको नीच बुद्धि का समझेंगे, गँवार समझेंगे, असभ्य कहेंगे। लोगों की नजरों में आप गिर जायेंगे। आपकी औकात धूल में मिल जायगी, इसलिए शेक्सपीयर के शब्दों में, आपकी बातचीत को, अपशब्द रहित खुशी से भरी, प्रदर्शन रहित बुद्धिपूर्ण, असभ्यता रहित आजादाना, अहमन्यता रहित विद्वता-पूर्ण, असत्य रहित और नूतन होना चाहिए।"

शिष्टाचार के लिए बातचीत की शिष्टता बहुत आवश्यक है, इस बात पर गहराई से मनन करें। आपसे जो बड़े और पूज्य हैं, उनके साथ बात-चीत करते समय विनय, नम्रता का परिचय देना चाहिए। बातों में लापरवाही, उच्छृङ्खलता और उद्दण्डता नहीं आने देनी चाहिए। कभी किसी से कठोर वचन नहीं कहने चाहिए। वाणी में ही अमृत है और वाणी में ही विष है। इसलिए सदैव हृदय को मन-लगन वाले वचव बोलने चाहिए। कबीरदास जी ने कहा है—

ऐसी बाणी बोलिए, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे, आपहु कोतल होय॥

कभी झूठे वचन मत कहो। बातचीत करते समय गालियाँ मत दो और न गन्दी तथा फूहड़ मजाक करो। बातचीत में अपनी हठधर्मी दिखाते हुए कभी व्यर्थ की बहस मत करो। शान्ति के साथ न्याय-संगत और सत्य बात को स्वीकार करलो। जिन शब्दों को आप नहीं जानते, उनका प्रयोग मत करो। बिना पूछे, बिना बुलाए किसी की बातचीत में टाँग अड़ाना मूर्खता और असभ्यता है। बातचीत करते समय मुँह, आँख, कान, हाथों को मत मटकाओ। बातचीत सरल और सीधे शब्दों में करो। अपना पांडित्य प्रदर्शन करने के लिए शब्दाडम्बर से भरी भाषा का प्रयोग शिष्टता नहीं। व्यर्थ ही बातों को लम्बी बढ़ा कर विस्तारपूर्वक मत कहो, उस व्यक्ति से जो आपकी बात सुनना ही नहीं चाहता, बातें मत करो। किसी को जबरदस्ती रोककर बैठा-कर बातचीत करना अनुचित है। न तो बहुत ही मन्द स्वर से बात-चीत करो और न बहुत चिल्ला-चिल्लाकर बातचीत करो। दूसरे की बात समाप्त होने पर ही अपनी बातचीत शुरू करो।

विनयी और नम्र होना शिष्टाचार के लिए बहुत आवश्यक बात है। अभी कुछ समय पूर्व परिवार के सभी छोटे सदस्य रात को सोने के पहिले और सुबह जागने के बाद अपने से बड़ों के पैर छूते थे। समवयस्क नमस्कार करते थे। उम्र में छोटे अपनों से बड़ों के सामने कुर्सी या चारपाई पर नहीं बैठते थे। बैठे होते तो खड़े हो जाते थे।

उनकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करते थे, उनकी बात को नहीं काटते थे। अगर अपनी ओर से कुछ कहना होता तो बड़ी नम्रता से कहते थे। विद्यार्थी लोग अपने गुरुजनों का बड़ा मान करते थे। श्रद्धा और विनय सहित अपना पाठ याद करते थे। अपने साथियों के साथ हिल-मिलकर रहते थे। सेवा भाव और सादगी का जीवन व्यतीत करते थे। पर अब वैसी बात नहीं रही। अब माता-पिताओं और अपने बड़ों को प्रमाण करना तो दूर रहा, उनका यथेष्ट आदर भी नहीं किया जाता। उनकी आज्ञाओं का सरासर उल्लंघन किया जाता है। मुँह तोड़ जवाब दिये जाते हैं। उद्दण्डता और अभद्रता के साथ बात-चीत की जाती है। विद्यालयों में पढ़ने वाला छात्र तो आज और भी अधिक अविनयी, उच्छृङ्खल और उद्दण्ड होता जा रहा है। अपने साथियों की मजाक बनाने, रोब जताने, लड़ने-झगड़ने, अध्यापकों और गुरुजनों की मजाक उड़ाने, नकल उतारने में हमारे विद्यालयों के छात्र खूब प्रसिद्धि पा रहे हैं।

पर यह उद्दण्डता और अशिष्टता, यह अविनय और उच्छृङ्खलता वद्यार्थियों के लिए बड़ी अशोभनीय बात है। इस प्रकार वे कभी ऊँचा नहीं उठ सकते, अपने चरित्र को नहीं बना सकते, सदाचारी नहीं बन सकते, अपने सद्गुणों का विकास नहीं कर सकते, संक्षप में वे कोई भी अच्छे कार्य नहीं कर सकते। इसलिए प्रतिदिन सुबह उठकर अपने से बड़ों को प्रणाम करो। उनका आदर-सम्मान करो। उनकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करो। उनके आने पर खड़े हो जाओ। उनके साथ चलना हो तो उनसे एक-दो कदम पीछे होकर चलो। उनके हाथ में कोई सामान हो तो उसे स्वयं ले चलो। अपने से जो छोटे हैं, उनके साथ सदैव मधुर व्यवहार रखो। उन्हें कभी डांटो, फटकारो और मारो मत। उनके साथ ऐसा व्यवहार करो कि वे तुम्हें अपने बीच में पाकर प्रसन्नता अनुभव करें।

विद्यालय में भी शिष्टचार की वहुत आवश्यकता है। विद्यार्थियों को ठीक समय पर स्कूल पहुँचना चाहिए। उनके कपड़े साफ होने

चाहिए, चेहरे पर प्रसन्नता के भाव होने चाहिए। अध्ययन के लिए जो-जो पुस्तकें आवश्यक हैं, जो कापियाँ चाहिए, वह सब उनके पास होनी चाहिए। विद्यालय में कदम रखते ही, अपने साथियों से मिलते ही उन्हें प्रेमपूर्वक अभिवादन करना चाहिए, गुरुजनों को प्रणाम करना चाहिए। कक्षा में शांतिपूर्वक और पूर्णतः अनुशासन के साथ बैठना चाहिए। अध्यापक जो कुछ पढ़ाएँ उसे ध्यानपूर्वक सीखना चाहिए। अध्यापक महोदय जो भी प्रश्न पूछें उसका उत्तर विनम्रता के साथ देना चाहिए। अपने स्थान पर उचित ढंग से बैठना चाहिए। कक्षा में वातचीत और अन्य व्यर्थ की वातों से कक्षा की शांति भंग नहीं करनी चाहिए। अपने सहपाठियों का मजाक उड़ाना, अध्यापक महोदय के काम में जान-बूझकर विघ्न डालना, उनकी नकल बनाना बहुत अशोभनीय वातें हैं।

कक्षा के वाहर भी शिष्टता से काम लें। थूकने के स्थान पर थूकें और इधर-उधर कूड़ा न फैलाएँ। कक्षा के वाहर व्यर्थ की चहलकदमी न करें। ऊँचे स्वर से हँसते हुए, अथवा शोर मचाते हुए नहीं चलें। स्कूल समाप्त होने पर शांतिपूर्वक अपने घर जाएँ। रास्ते में किसी से लड़ाई-झगड़ा और गाली-गलौज नहीं करें, वल्कि अपने साथियों से शिष्ट वार्त्तालाप करते हुए अपने घर पहुँचे।

पढ़ने और लिखने के विषय में शिष्टाचार का पूरा ध्यान रखो। यदि कोई मनुष्य कुछ लिख-पढ़ रहा हो तो उसके पीछे खड़े होकर चुपचाप उस चीज को पढ़ने की चेष्टा मत करो। लिखते समय कलम अथवा स्याही से उँगलियों को गन्दा मत करो। कलम में भरी हुई स्याही के छींटे इधर-उधर दीवालों और फर्श पर मत डालो। पेंसिल से लिखते समय उसकी नोंक पर थूक मत लगाओ। वहुत से लोग कलम हाथ में आते ही, कुछ-न-कुछ लिखना प्रारंभ कर देते हैं। इस प्रकार वे अच्छे कागजों और पुस्तकों को गन्दा कर देते हैं। यह असभ्यता है। अपनी पुस्तकों को आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखो। उनसे पेर मत लगाओ। उन्हें स्वच्छ रखो, उसके पृष्ठ मत मुड़ने दो।

यदि आप किसी व्यक्ति की पुस्तक लाए हैं तो उसे ठीक समय पर लौटा दो। उसे सावधानी के साथ रखो। यदि कोई व्यक्ति पढ़-लिख रहा हो तो व्यर्थ की बातचीत अथवा शोर-गुल करके उसके अध्ययन में विघ्न डालना बिल्कुल अनुचित है।

सभा या सोसाइटी में शिष्टाचार का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए। सभा में नियत समय पर पहुँच कर उचित स्थान पर उचित ढङ्ग से बैठना चाहिए। इस प्रकार बैठो जिससे कि दूसरे लोगों को कष्ट न हो। सभा और सोसाइटी के नियमों का पूरा पालन करना चाहिए। यदि कोई सज्जन व्याख्यान दे रहे हों तो उनकी बात ध्यान-पूर्वक सुननी चाहिए। ऐसे समय बातचीत करना, व्यर्थ की ताली बजाकर, शोर-गुल मचाकर, अथवा अन्य उपायों से व्याख्यानदाता को उखाड़ने का प्रयत्न करना बुरी बात है। यदि आपको सभा का कार्य-क्रम पसन्द नहीं आ रहा हो तो भी शिष्टाचार के नाते शान्ति-पूर्वक आपको बैठना चाहिए। सभा में बीच से उठना अच्छी बात नहीं। बहुत ही आवश्यक कार्य होने पर ऐसा करना चाहिए।

सभा-सोसाइटी में ही नहीं, जीवन के प्रत्येक कार्य में आपको शिष्टाचार अपनाना चाहिए। अपनी रहन-सहन, चाल-ढाल, वेष-भूषा, उठना-बैठना, खान-पान, आदर-सत्कार, सड़क पर चलते हुए, सफर करते हुए, किसी मित्र के भेंट होने पर, किसी अपरिचित से मिलने पर, किसी के घर जाने पर, अपने समाज में, सभी जगह आपका व्यवहार सभ्य-शिष्ट और सदाचरण से भरा हुआ होना चाहिए। जहाँ भी जायें, जिस स्थिति में रहे, हमें अनुशासन का, नियमों और मर्यादाओं का तथा व्यवस्था का पूरा ध्यान रखना चाहिए। हमें कोई भी कार्य करते हुए इस प्रकार का प्रदर्शन नहीं करना चाहिए, जो लोगों को अरुचिकर, अप्रिय मालूम दे और वे लोग हमें असभ्य, मूर्ख और गँवार समझें। उदाहरण के लिए हम रेल के सफर को ही लें। टिकट लेने की खिड़की पर पहुँचते हैं तो वहाँ अपार भीड़ होती है। एक-दूसरे को ढकेलते हुए, हम सबसे पहले टिकट लेने का प्रयत्न करते

हैं। पंक्ति वनाकर सभ्यता के साथ टिकट नहीं ले सकते। अब जरा प्लेटफार्म का दृश्य देखिये। कहीं कूड़ा पड़ा है, कहीं पान की पीक। कहीं कोई यात्री अपने वच्चों को शौच करा रहा है। क्या एक सभ्य देश के स्टेशन का प्लेटफार्म ऐसा ही होना चाहिये ? क्या कोई विदेशी इसको देखकर हमारे सम्वन्ध में अच्छी धारणा वना सकेगा।

रेल में बैठने की वात तो और भी निराली है। अन्दर बैठे हुए यात्री नहीं चाहते कि कोई अन्दर आवे। वाहर एक ही खिड़की से घुसने के लिए वहुत से लोग संघर्ष करते हैं। इस संघर्ष में लोगों के चोट लगना, आपस में लड़ाई-झगड़ा होना तो साधारण वात है, यदि हाथा-पाई तक की नौवत आ जाय तो कोई आश्चर्य नहीं। रेल के डिब्वे में किसी प्रकार घुसने पर मालूम होता है कि वर्थों पर कुछ लोग आराम से सो रहे हैं। उन्हें उन लोगों का कतई ध्यान नहीं है जो एक कोने में सिमटे और सिकुड़े हुए हैं। जव उनसे वैठने के लिए कहा जाता है तो डाँट-डपट के साथ अपना रोव जमाने की कोशिश करते हैं। डिव्बे के भीतर कहीं मूँगफली के छिलके पड़े मिलेंगे तो कहीं केले के छिलके। यदि गाड़ी किसी स्टेशन पर रुके तो वाहर से चढ़ने वाले यात्री अन्दर के यात्रियों का कुछ भी ध्यान नहीं रखते। डिव्वे में चाहे पुरुष हों, अथवा स्त्रियाँ, वृद्ध हो अथवा वालक, सामान उनके ऊपर फेंक दिया जाता है। इस प्रकार यह सामाजिकता और नागरिकता की एक छोटी सी झलक है। यह इस वात को प्रकट करती है कि हम लोगों में शिष्ट-व्यवहार और सभ्य आचरण का कितना अभाव है। यही नहीं वहुत से लोग रेलों में विना टिकट यात्रा करते हैं। रेलों में ही क्यों, वे अपनी साइकिल का टैक्स भी नहीं देना चाहते। हमारे जीवन में यह अनैतिकता इतनी वढ़ गई है कि अव तो लोग रास्ते में लगे हुए सरकारी वल्वों को गायव करने में भी खुशी और गौरव महसूस करते हैं। यह हमारे आचरण और सभ्यता का कितना विकृत रूप है। हम भूल जाते हैं कि समाज में हमारे समान अन्य व्यक्ति भी हैं। जिस प्रकार हम चाहते हैं कि लोग हमारी सुख और सुविधा का

ध्यान रखें। हमारे आराम का ख्याल रखें, हमारे साथ अच्छा व्यवहार करें, उसी प्रकार की बातें सभी लोग चाहते हैं। तब फिर क्यों न हम भी दूसरे लोगों के साथ अच्छा व्यवहार करें, जिससे दूसरे लोग भी आपके साथ अच्छा व्यवहार करें। इसीलिए सभ्य बनो, शिष्ट बनो और सत् आचरण रखो। स्वयं चैन से रहो और दूसरों को चैन से रहने का अवसर दो।

शिष्टाचार के लिए एक आवश्यक बात तो यह है कि शिष्टाचार दिखावे के लिए न होना चाहिए। यदि आपका शिष्टाचार बनावटी हुआ तो वह आपके चरित्र की बुराई का प्रतीक होगा। प्रायः बहुत से लोग ऊपर से बड़े नम्र, विनयी और साधु स्वभाव के मालूम होते हैं परन्तु अन्दर से बड़े मैले, स्वार्थी और बुरे स्वभाव के दिखलाई देते हैं। उनकी कथन और करनी में बड़ा अन्तर होता है और वे लोग 'मुँह में राम बगल में छुरी' वाली कहावत को पूर्ण रूप से चरितार्थ करते हैं। ऐसे लोग बड़े भयानक होते हैं। अपना उल्लू सीधा करने के लिए वे आपके साथ बड़ा मधुर व्यवहार करेंगे, बड़ी शिष्टता के साथ आपसे पेश आयेंगे, बड़े मीठे शब्दों में आपका स्वागत करेंगे, परन्तु मतलब हल हो जाने पर सीधे मुँह बात नहीं करेंगे। अवसर आने पर तो आपको धोखा देने में कोई कसर नहीं छोड़ेंगे। इस प्रकार शिष्टाचार को अपनी स्वार्थ पूर्ति कर माध्यम बनाकर उसकी ओट में वे शिकार खेलते हैं। ऐसे धोखेबाज, स्वार्थी और बनावटी आचरण वालों से सदैव दूर रहना चाहिए।

लोगों में शिष्टता और सभ्यता का क्यों अभाव है, इसका मूल कारण उन लोगों का मिथ्याभिमान है। इसी मिथ्याभिमान के कारण हम लोग अविनयी और उच्छृङ्खल बनते जा रहे हैं। माता-पिताओं की आज्ञाओं का उल्लंघन करते हैं। गुरुजनों का उपहास करते हैं। साथियों की मजाक उड़ाते हैं। उनसे लड़ाई-झगड़ा करते हैं। लोगों पर रोब जमाने की कोशिश करते हैं। अशिष्ट वर्त्ताव करते हैं। बुरे काम करते हैं और उन पर बजाय पश्चात्ताप करने के गौरव अनुभव

करते हैं। किसी को अपने आगे कुछ नहीं समझना चाहते और सदा दूसरों को कष्ट पहुँचाने में खुशी महसूस करते हैं। अहं की भावना इतनी प्रवल हो गई है कि लोग किसी प्रकार नीचे नहीं झुकना चाहते हैं। अपनी बात पर चाहे गलत हो या सही, अड़े रहना चाहते हैं। लोगों की पारस्परिक कटुता और लड़ाई-झगड़ों का यही मूल कारण है। इस प्रकार की घटनाओं से सम्वन्धित एक शिक्षाप्रद कहानी शायद आपने भी पढ़ी हो।

एक वार एक पतले से पुल पर दो वकरियाँ विपरीत दिशाओं से चली आ रही थीं, परन्तु रास्ता ऐसा था कि उस पर से एक ही वकरी निकल सकती थी। एक स्थान पर आकर दोनों वकरियाँ रुक गईं। दोनों ही पुल से पार उतरना चाहती थीं और यह वात उस पुल पर सम्भव नहीं थी, क्योंकि उनमें से एक ही वकरी पुल से पार जा सकती थी। अव दोनों वकरियों में झगड़ा शुरू हो गया। इसका फल यह हुआ कि दोनों वकरियाँ नदी में गिर पड़ी और डूव गईं। उसी पुल से दो अन्य वकरियाँ उसी प्रकार गुजरीं। वे भी विपरीत दिशाओं में जा रही थीं। एक स्थान पर जव वे आकर मिलीं तो उनके सामने भी यही समस्या उपस्थित हुई कि नदी के पार किस प्रकार पहुँचा जाय। इसके लिए इन वकरियों ने आपस में लड़ाई झगड़ा नहीं किया। क्योंकि ये वकरियाँ बुद्धिमान थीं और उनमें पहली वाली वकरियों के समान मिथ्याभिमान नहीं थीं। फलतः उन वकरियों में से एक तो नीचे लेट गई, दूसरी उसके ऊपर से होकर निकल गई। इन वकरियों की भाँति हमें झूठ अभिमान के फेर में न पड़ कर उदारता और सहनशीलता से काम लेना चाहिए। अपने कर्त्तव्यों का पालन और दूसरों के अधिकारों की रक्षा करनी चाहिए। यदि हम गलत मार्ग पर चल रहे हैं तो उसे तुरन्त छोड़ देना चाहिए। व्यर्थ का हठ नहीं करना चाहिए। हमें अपनी गलती स्वीकार कर उस पश्चात्ताप करना चाहिए। अपना झूठा अभिमान प्रकट करने के लिए उसे वार-वार नहीं दुहराना चाहिए।

यह मिथ्याभिमान उन लोगों में अधिक पाया जाता है जो किस ऊँचे पद पर होते हैं, या मानमर्यादा, धन दौलत में बड़े होते हैं। ऐ लोग आदमी को आदमी नहीं समझते। किसी से सीधे मुँह बात नह करते। अपने मातहतों को बात-बात पर झिड़कते हैं। रात-दिन म में चूर रहते हैं। अपनी सुख-सुविधा का उन्हें पूरा ध्यान रहता है परन्तु औरों की वे तनिक भी परवाह नहीं करते। उनसे मिलने के लिए लोग बाहर घण्टों धूप में खड़े रहते हैं, परन्तु उन्हें कभी उन लोगों से मिलने की फुर्सत ही नहीं मिलती। वे तब पंखे के नीचे बैठे हुए आराम कर रहे होते हैं। यदि वे इस प्रकार लोगों को परेशान नहीं करें, उन्हें धूप में खड़ा नहीं करें तो लोग कैसे उन्हें आदमी समझें। इस प्रकार लोग अपना बड़प्पन जताने के लिए, अपनी झूठी शान दिखाने के लिए, अधिक सभ्य होने की अपेक्षा असभ्य बनते जा रहे हैं। बजाय बड़े होने के वे वास्तव में छोटे होते जा रहे हैं। इसलिए कि लोग उनके मुँह पर चाहे खुशामद के लिए दो-चार शब्द कहते हों, परन्तु पीठ पीछे गालियाँ ही देते हैं।

शिष्टाचार का विकास समाज के बीच होता है। समाज ही नहीं रहेगा तो अकेले व्यक्ति के शिष्टाचार का सवाल ही नहीं उठता। इस-लिए सच्ची शिष्टता और सभ्यता इस बात में है कि हम ऐसा आचरण करें जिससे समाज का कल्याण हो। इसके लिए हम सामाजिक चेतना के भाव को जाग्रत करें। सामाजिक चेतना के जागृत होने का मत-लब है कि हम समाज के सुख-दुख को अपना समझें। अपने लिए न जीकर समाज के लिए जिएँ। हमारे जीवन का उद्देश्य अपने ही स्वार्थों की पूर्ति न बनकर लोक-हिताय बने। इसके लिए आपको निरभिमानी और निस्वार्थ बनना पड़ेगा। जब तक आप में स्वार्थ की भावना है, हृदय पर अहंकार की कलुष छाया है, आप समाज के सुख-दुख के सच्चे साथी बन ही नहीं सकते। यदि आपने निस्वार्थ भाव और निर-भिमानता के आदर्श को अपना लिया तो आप निश्चय समझिए कि

एक दिव्य सन्तोष और सुखानुभूतियों का अनुभव करेंगे। आप सबके प्रिय होंगे। लोग आपको अपने सुख का भागी बनाना चाहेंगे, दुःख में आपकी सम्मति लेना चाहेंगे। आपका प्रत्येक स्थान पर सच्चे हृदय से श्रद्धा सहित सत्कार करेंगे। पर यदि आप स्वार्थी और अहङ्कारी हैं तो लोग आप से घृणा करेंगे। आप पर विश्वास नहीं करेंगे। रास्ते में लोग आप से बच कर चलेंगे। आपके सहवास को अच्छा नहीं समझेंगे। अब बतलाइए आप को क्या पसन्द है? निस्वार्थ भाव या निरभिमानता, स्वार्थ या अहं भावना।

बहुत से लोग समझते हैं कि लोक हितकारी कार्य करना तो समाज-सेवकों का कार्य है। सामाजिक कल्याण तो बड़े आयोजनों द्वारा ही किए जा सकते हैं। पर उनका यह केवल भ्रम है। समाज कल्याण के कार्य केवल सार्वजनिक संस्थाओं द्वारा ही नहीं किए जाते और न उनके लिए बड़े-बड़े प्रोग्रामों की आवश्यकता होती है। हम लोगों के दैनिक जीवन में होने वाले बहुत से छोटे कार्य सामाजिक कल्याण से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं। अपने दैनिक जीवन के छोटे-छोटे कार्यों को कम महत्त्वपूर्ण मत समझो। अँग्रेजी कवि वर्डस्वर्थ की एक पंक्ति है—'Small Service is true Service while it lasts' अर्थात् मनोयोग से किया गया छोटे से छोटा कार्य भी सच्ची सेवा का स्वरूप है। वास्तव में मनुष्य का बड़प्पन छोटे-छोटे कार्यों द्वारा ही जाना जाता है। इसलिए हमें अपने छोटे कार्यों को महानता का रूप देना चाहिए। उन्हें जन-कल्याण की भावना के रूप-रस से भरना चाहिए। इसके लिए अपने हृदय को अधिक से अधिक उदारता, सेवा, दया आदि गुणों से भरपूर बनाना चाहिए। यही सच्चा शिष्टाचार है। सत्यकाम विद्यालङ्कार के शब्दों में, "शिष्टाचार का प्रदर्शन केवल हाथ मिलाने या हाथ जोड़ने में नहीं होता अथवा डिनर टेबिल पर बैठने-खाने के ढङ्ग में या पोशाक के चुनाव में ही नहीं होता। ये बाह्य चिह्न तो अन्दर की सद्भावना के चिह्न हैं। शिष्टाचारा का आधार दूसरों को सुख-सुविधा देना ही है।

अपनी सहूलियत का ख्याल छोड़कर दूसरों की भावनाओं का सम्मान करना ही शिष्टता है। सभ्य वही है जो दूसरों की भावना का आदर करता है, उसे हीनता अनुभव नहीं होने देता, उसके उत्कर्ष के लिए और उसकी सुख-सुविधा के हेतु अपने स्वार्थों की बलि देता है।"

चरित्र बल

"संसार को ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता है जो धन के लिए अपने को बेचते नहीं, जिनके रोम-रोम में ईमानदारी भरी हुई, जिनकी अन्तरात्मा दिशादर्शक यन्त्र की सुई के समान एक शुभ तारे की ओर देखा करती है, जो सत्य को प्रकट करने में राक्षस का सामना करने से भी नहीं डरते. जो कठिन कार्यों को देखकर हिचकते नहीं, जो अपने काम का ढिंढोरा न पीटते हुए साहसपूर्वक काम करते जाते हैं, मेरी दृष्टि में वे ही सबसे बड़े आदमी हैं।" स्वेट मार्डेन के ये शब्द कितने महत्वपूर्ण हैं। वास्तव में चरित्र ही मनुष्य की सबसे बड़ी शक्ति है, सबसे बड़ा प्रभाव है। धन के नष्ट होने पर कुछ हानि नहीं होती, स्वास्थ्य को खो जाने से कुछ हानि होती है, परन्तु चरित्र के नष्ट होने पर सब कुछ नष्ट हो जाता है, सर्वस्व चला जाता है। मनुष्यों में जो कुछ भी मनुष्यत्व है, उसका प्रतिबिम्ब ही उसका चरित्र है। चरित्र-हीन मनुष्य, मनुष्य नहीं रहता वह तो पशु बन जाता है।

चरित्र शब्द बहुत व्यापक है और वह मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रगट करता है। इसमें समस्त मानवोचित गुणों का समावेश रहता है। हृदय की विशालता, उदारता, त्याग, सेवाभाव, क्षमा, शक्ति, विनय, सत्य-भाषण, ईमानदारी, धैर्य, कर्त्तव्यपरायणता, वचनों का प्रतिपालन, लोभ में न पड़ना, आत्म-संयम आदि गुणों का सामूहिक रूप ही चरित्र है। यह चरित्र हमें अपने माता-पिता से विरासत रूप

में नहीं मिलता, वरन् चरित्र का निर्माण हमें स्वयं अपने हाथों से करना पड़ता है। कोई भी बालक जन्म से ही चरित्रवान और दुश्चरित्रवान बनकर नहीं आता और न जिन परिस्थितियों में वह जन्म लेता है, उससे ही उसका चरित्र बनता है। एक साथ रहने वाले बहुत से व्यक्ति एक ही प्रकार की परिस्थितियों में जन्म लेते हैं, एक ही प्रकार की परिस्थितियों में उनका विकास होता है, फिर भी उन व्यक्तियों के जीवन के प्रति दृष्टिकोण अलग-अलग होते हैं। उनका स्वभाव, उनकी आदतें भिन्न-भिन्न होती हैं। एक ही परिवार में पलने वाले दो भाई जिनको एक ही सी सुविधाएँ प्राप्त हैं, एक ही प्रकार की परिस्थितियों के बीच जिनका जीवन पलता है, परन्तु फिर भी क्या कारण है कि एक भाई आत्मविश्वासी, संयमी, तपस्वी होता है, दूसरा भोग-विलासी और अनैतिक भावनाओं से भरा रहता है। इसलिए हम कह सकते हैं कि परिस्थितियाँ मनुष्य के चरित्र का निर्माण नहीं करती। तब फिर मनुष्य के चरित्र का निर्माण किस प्रकार होता है?

आप देखते हैं कि हमें जीवन में अनेक परिस्थितियों के बीच होकर गुजरना पड़ता है। परिस्थितियों के प्रति हमारे मन में अनेक प्रकार की प्रतिक्रियाएँ होती हैं। मनुष्य के हृदय में एक ही प्रकार की घटना को देखकर भिन्न-भिन्न प्रकार के भाव उठते हैं। भिखारी को देखकर एक मनुष्य के हृदय में घृणा पैदा होती है, एक के हृदय में दया, एक उसे दुत्कार देता है। बस घटनाओं और परिस्थितियों के प्रति हमारी ये मानसिक प्रतिक्रियाएँ ही हमारे चरित्र का निर्माण करती हैं। इन्हीं प्रतिक्रियाओं के नित-प्रति के जमाव से हमारा चरित्र बनता है, हमारे संस्कार दृढ़ होते हैं। इसलिए इन प्रतिक्रियाओं तथा घटनाओं और परिस्थितियों के सम्बन्ध में अपने दृष्टिकोणों को हम जितना अधिक अच्छा स्वरूप देंगे, हम जितना अधिक उन्हें उज्ज्वल बनायेंगे, उतना ही अधिक हमारे जीवन का स्वस्थ निर्माण होगा, उतना ही अधिक उज्ज्वल चरित्र का निर्माण हम कर सकेंगे। आप यह नहीं कह सकते कि हमें ऊँचा उठने के लिए, चरित्र निर्माण के

लिए अनुकूल परिस्थितियाँ नहीं मिलीं। दूसरे लोग जीवन में सफलता के अधिकारी बने, इसका कारण भी आप यह नहीं कह सकते कि उन्हें जीवन को सफल बनाने वाली सुविधाएँ प्राप्त थीं। वास्तव में आपके पिछड़ने और उनके ऊँचा उठने का कारण यही है कि परिस्थितियों से पैदा होने वाली उनकी मानसिक प्रतिक्रियाएँ, ऊँचे आदर्शों की ओर झुकीं और उन्हीं परिस्थितियों को लेकर आपने अपने जीवन में बुरे संस्कारों की नींव डाली।

ये चारित्रिक संस्कार बचपन से ही बनने शुरू हो जाते हैं। सच पूछा जाय तो बचपन में जैसे संस्कार बन जाते हैं, जीवनपर्यन्त तक वैसे ही बने रहते हैं। बीच में उन्हें बदलना बड़ा कठिन होता है। बचपन उस सफेद चिकने कागज की तरह है, जिस पर सुन्दर-असुन्दर सभी प्रकार के अक्षर लिखे जा सकते हैं। इसलिए हमें बचपन से ही अपने चरित्र की ओर ध्यान देना चाहिए, भावी चरित्र-निर्माण का यही शुभ अवसर है। सुन्दर आदतों के, चारित्रिक गुणों के बीज अभी से हमारे जीवन की क्यारी में बो दिए जायेंगे, आगे जाकर वे ही पल्लवित और विकसित होंगे। यदि हम परिश्रमी और अध्यवसायी बनना चाहते हैं, विनयशील और सदाचारी बनना चाहते हैं, उत्साही और आशावान बनना चाहते हैं, संयमी और परोपकारी बनना चाहते हैं तो हमें बचपन से ही जीवन में होने वाली परिस्थितियों के कारण प्रतिक्रियाओं को ऐसा रूप देना पड़ेगा, जिसके कि हमारे हृदय में ये गुण जागृत हों और हम इनके प्रति आकर्षित हों। यह कार्य एक दिन का नहीं है, वरन् अध्यवसाय और निरन्तर आचरण द्वारा हम इन गुणों का अपने जीवन का अङ्ग बना सकते हैं।

मनुष्य में कुछ जन्मजात स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ होती हैं। इन प्रवृत्तियों की कोई वैज्ञानिक परिभाषा करना कठिन है, फिर भी कुछ प्राथमिक प्रवृत्तियों का नाम लिया जा सकता है, जैसे अपनी रक्षा करने की भावना, भय की भावना, दूसरों से मिलने-जुलने, मान और प्रतिष्ठा की भावना, अधिक सुख प्राप्त करने की इच्छा, संग्रह करने

की इच्छा और जीवन-निर्वाह के लिए प्रयत्न करने की प्रवृत्ति। मनुष्य की प्रवृत्तियाँ मनुष्य के चरित्र को ऊँचा भी उठा सकती हैं और नीचे भी गिरा सकती हैं। यदि हम इन प्रवृत्तियों को अपने वश में कर लेते है, अपने अधीन इन शक्तियों को अपने मन के अनुसार उपयोग में लाते हैं, तव तो ये प्रवृत्तियाँ हमारे चरित्र निर्माण में सहायक वनती हैं। अन्यथा हमें अपना गुलाम वनाकर हमारे चरित्र को पंगु वना डालती हैं। इसलिए चरित्र-निर्माण के लिए इन प्रवृत्तियों को वश में करना सवसे पहली शर्त है। प्रवृत्तियों को नियन्त्रण में रखने का अभिप्राय इनका दमन करना नहीं, वरन् उचित दशा में इनका प्रयोग करने से है। हमें अपनी प्रवृत्तियों की व्यवस्था इस प्रकार करनी चाहिए जिससे कि उनका उपयोग शुभ कार्यों के लिए किया जा सके। जिस प्रकार एक जलधारा प्रचण्ड और अनियन्त्रित होने पर वड़े-वड़े नगरों का विनाश कर सकती है, परन्तु नियन्त्रण द्वारा उसी जलधारा का उपयोग कृषि-सिंचन और विद्युत-उत्पादन के लिए किया जा सकता है, उसी प्रकार अनियन्त्रित प्रवृत्तियाँ हमें नष्ट कर सकती हैं, नियन्त्रण द्वारा उनका उचित उपयोग कर हम अपने चरित्र का निर्माण कर ..ते हैं।

अपने चरित्र के निर्माण के लिए सवसे आवश्यक वात है, भय की प्रवृत्ति को नियन्त्रण में करना। जो भय की प्रवृत्ति का दास वन गया, उसके चरित्र का विकास कभी हो ही नहीं सकता। भय से किए जाने वाले कार्य मनुष्य को नीचे गिराते हैं, उसकी शक्ति, आत्म-वल और महत्वाकांक्षाओं को दुर्बल वनाते हैं। एक व्यक्ति समाज में अपना सुधार तो करना चाहता है, पर लोक-अपवाद के भय से, समाज के डर से अपनी इच्छा को पूरा नहीं कर पाता, मन में सोचकर रह जाता है। किसी पराधीन देश के लोगों में राष्ट्र-प्रेम तो है परन्तु वे डरते हैं कि कहीं उनके शासकों को उनके राष्ट्र-प्रेमी होने का पता नहीं चल जाए नहीं तो उन्हें शासन से दमन का शिकार होना पड़ेगा। यह जीवन का लोभ आज इतना वढ़ गया है कि लोग इसके लिए अपनी इज्जत वेचते

हैं, झूठ बोलते हैं, दूसरों को हानि पहुँचाते हैं, पग-पग पर कायरों की भाँति दूसरों के सामने घुटने टेकते हैं। इसलिए भय को वश में किये बिना हमारे हृदय में ऊँचे आदर्श और स्वस्थ प्रेरणाएँ पनप ही नहीं सकतीं। भय से मुक्त होने पर ही यह सब कुछ सम्भव है। जब तक हृदय निर्भीक नहीं होगा, तब तक हम कैसे असत्य के आगे अविचल रह सकते हैं, अत्याचार और अनाचार से लोहा ले सकते हैं, अपने वचन पर दृढ़ रह सकते हैं, लाख कठिनाइयाँ आने पर भी अपने ध्येय पर अटल रह सकते हैं।

महान् पुरुषों की जीवन गाथाएँ इस बात के लिए साक्षी हैं कि निर्भीक होकर ही, बिना किसी भय और दबाव के ही उन्होंने संसार के बीच अपने महान् कार्यों का प्रतिपादन किया है। इतिहास के पन्ने ऐसे अमर वीरों की यश-सुरभि से आज भी महक रहे हैं, जिन्होंने प्राणों पर संकट आने पर भी अधर्म और असत्य के आगे सिर नहीं झुकाया। जो अपने ध्येय और आदर्श के लिए ध्रुव तारे की तरह अटल रहे। गुरु गोविन्दसिंह के बच्चे, औरंगजेब ने जीवित ही दीवाल में चिनवा दिए पर उन सिंह-पुत्रों ने उफ तक नहीं की। हँसते-हँसते धर्म की खातिर बलिदान हो गए। प्रताप, दुर्गादास, जैसे अनेक राजपूत वीरों ने तिल-तिल जलकर स्वतन्त्रता देवी की उपासना की, परन्तु जीवन के भय से उन्होंने अपने कर्त्तव्य पथ से मुख नहीं मोड़ा। रानी लक्ष्मीबाई को अँग्रेजों ने आदेश दिया कि वे अपनी झाँसी फिरंगी सरकार को सौंप दें अन्यथा युद्ध के लिए तैयार रहें। वीर नारी लक्ष्मीबाई इन धमकियों में नहीं आई। उसने अपनी झाँसी अँग्रेजों को नहीं दी और वह जीवन-पर्यन्त अदम्य साहस और वीरता के साथ अँग्रेजों से जूझती रही। गांधी, तिलक, लाजपतराय, सुभाष, पं० जवाहरलाल, सरदार पटेल आदि हमारे स्वतन्त्रता आन्दोलन के सैनानी, जिनके तप और त्याग के बल पर हमने स्वतन्त्रता पाई, जिन्होंने अपने जीवन का मोह छोड़ कर अँग्रेज जैसे प्रबल शत्रु से टक्कर ली, यदि वे भयवश अपना पथ छोड़ देते तो, आज हमें स्वतन्त्रता कहाँ से प्राप्त हो पाती ?

इसलिए चरित्रवान वनने के लिए निर्भीक वनो। मुसीवतों और कठिनाइयों के वीच डटे रहो। अत्याचार और अनाचार के आगे घुटने मत टेको। असत्य और अधर्म की धमकियों से मत घवड़ाओ। हिमालय की तरह कर्त्तव्य मार्ग पर अटल रहो। विजय तुम्हारी है, सफलता तुम्हारी है। कवीर ने समाज के ढोंग और पाखण्डों पर करारी चोटें कीं, मुल्लाओं को फटकारा और पण्डितों को खरी-खोटी सुनाई, योग मार्गियों को खूव लताड़ा, तव ये सव लोग कवीर के विरुद्ध हो गये। मुल्लाओं ने कवीर को काफिर कहा। सिकन्दरशाह ने उन्हें मुसलमानों का दुश्मन समझ हाथी के पैरों के नीचे खुदवाना चाहा, साँकल वाँधकर गंगा में डुवोना चाहा। पण्डितों और नाथपंथियों ने उन्हें मिटाना चाहा, पर इससे क्या कवीर डर गये? क्या उन्होंने अपना रास्ता वदल दिया? नहीं उन्होंने तो डंके की चोट कहा—

"हम न मरिहै, मरिहै संसारा।"

इसीलिए कवीर जो चाहते थे, उसे पूरा करके ही रहे।

चरित्रवान वनने के लिए आपको प्रेम के दिव्य प्रकाश से अपने चरित्र को प्रभावित करना होगा। प्रेम ही वह दिव्य ज्योति है, जिसे र मनुष्य देवता वनता है। प्रेम ही आत्मा का सच्चा प्रकाश है। ही आदर्श जीवन की सर्वोत्कृष्ट प्रेरणा है। प्रेम की प्रेरणा से काम रन। ईश्वर की प्रेरणा से कार्य करना है। इसीलिए मनुष्य को परम ध्येय की ओर ले जाने वाली सच्ची प्रेरणा प्रेम-भाव ही है। वाईविल में कहा है "Beloved let us love one another, for love is God, and every one that loves is born of God and knows God, He that loves not knows not, God, for God is love अर्थात् "हमें एक-दूसरे से प्रेम करना चाहिए, क्योंकि प्रेम ही ईश्वर है। जो प्रेम करता है वही ईश्वर को जानता, जो प्रेम नहीं करता, वही ईश्वर को नही जानता।" भर्तृहरि के एक नीति श्लोक का अर्थ है—"घृणा राक्षसों की सम्पत्ति है, क्षमा मनुष्यत्व का चिह्न है, परन्तु प्रेम देवताओं का स्वभाव है।" तथागत बुद्ध के शब्दों में, "प्रेम मनुष्यत्व का नाम है।"

'प्रेम' इन दो शब्दों को लेकर बहुत-कुछ कहा जा सकता है। 'प्रेम' के सम्बन्ध में गलतफहमियाँ भी खूब है। ईश्वर के प्रति किए गए दिव्य प्रेम से लेकर अधम लौकिक वासना को भी आज प्रेम नाम की संज्ञा दी जाती है। पर प्रेम का अर्थ यह नहीं है। सच्चा प्रेम, विवेकानन्द के शब्दों में 'फलाशारहित प्रेम' को कहते हैं। जुन्नेद नाम के एक नीतिकार ने भी कहा है, " विना किसी स्वार्थ की गन्ध के जो प्रेम होता है वह सच्चा प्रेम है।" इस प्रकार प्रेम कोई सौदा नहीं है, जिसमें लेनदेन होता हो। यह तो एक ऐसा दान है जो अपना प्रतिपादन नहीं चाहता है। प्रेम में तो देना ही देना है, यह कुछ पाने की आकांक्षा से नहीं किया जाता। साधारणतया जीवन में हम जब कोई भी कार्य करते हैं तो उसके मूल में हमारा स्वार्थ छिपा रहता है। किसी भी कार्य को करने के पहिले हम यह देख लेते हैं कि इसका नतीजा हमारे लिए कैसा रहेगा ? इस प्रकार फल की आकांक्षा हमारे हर कार्य का आधार बन जाती है। पर प्रेम में ऐसी बात नहीं है। वह पुरस्कार और फल की आकांक्षा से रहित होता है। प्रेम का लक्ष्य तो प्रेम ही है। यही उस निष्काम कर्म का रहस्य है, जिसका उपदेश भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में अर्जुन को दिया था।

कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्।
मा कर्मण्यफलहेर्भूर्मा तसंगोऽस्त्वकर्मणि ।।

इस प्रकार कर्म फल की इच्छा को छोड़कर कार्य करने वाला ही सच्चा कर्मयोगी है। यही प्रेम मनुष्य के चरित्र की परख है। चरित्रवान वही है जो प्रेम के लिए बलिदान करे। इस मार्ग में काँटे बिछे हों तो उसे फल समझे। प्रम तो त्याग और बलिदान का दूसरा रूप है। जिस प्रेम में जितना अधिक त्याग होगा, वह प्रेम उतनी ऊँचाई पर होगा। संसार में ईश्वर प्रेम के लिए, धर्म और जाति के प्रेम के लिए, राष्ट्र और समाज के प्रेम के लिए, मानवमात्र के प्रेम के लिए, अपनी आन और मर्यादा के प्रेम के लिए, अपने प्राणों को न्यौछावर कर देने वालों की कमी नहीं है। संसार में जितने भी महापुरुष हुए हैं,

सब प्रेम-मार्ग के पथिक थे, चाहे वह ईश्वर प्रेम हो, देश प्रेम हो या विश्व प्रेम हो।

आप भी प्रेम के दिव्य अमृत का पान करिए, ईश्वर के लिए, देश के लिए, मानवमात्र के लिए, सम्पूर्ण चराचर के लिए बिना किसी फल की आशा किए, निष्काम भाव से अपने जीवन को समर्पित करके। अपने जीवन के प्रत्येक क्षण को इनकी सेवा में लगा दीजिए। यही चरित्र का उत्कृष्टतम रूप है। यही सच्ची आत्मशक्ति है। यह मनुष्य के समस्त उदात्त गुणों का आधार है। जिस प्रेम पथ पर चलकर महावीर और बुद्ध ने संसार को सन्मार्ग के उपदेश दिए, जिस मार्ग को अपना कर गाँधी मनुजता के कल्पतरु के उत्कृष्टतम पुष्प बन गए, जिस प्रेम पथ को अपना कर मीरा अपने कृष्ण की बन गई, जिस प्रेम के दिव्य प्रकाश से प्रताप ने बन-बन फिर कर स्वतन्त्रता का अलख जगाया, जिस प्रेम की खातिर सुभाष ने दुस्सह कष्ट सहे, जिस प्रेम के लिए आजादी के लाखों दीवाने हँसते-हँसते मर मिटे, आप भी उसी प्रेम के मार्ग के पथिक बनिए।

चरित्रवान बनने के लिए चातक के व्रत की तरह अपने व्रत पर अटल रहिए। जिस प्रकार चातक केवल स्वाँति नक्षत्र का ही जल ग्रहण करता है, अन्य जल की ओर आँख भी नहीं उठाता, चाहे कितनी गर्मी पड़े, कितनी ही प्यास उसे लगे। उसी अपने प्रकार व्रत पर अटल रहने वाला चरित्रवान पुरुष भी अनेक कठिनाइयों और मुसीबतों के बीच अपनी मर्यादा नहीं त्यागता, अपना व्रत नहीं छोड़ता। लोगों की तरह वह गिरगिट की भाँति रंग नहीं बदलता, चाँदी के चंद टुकड़ों के लिए अपनी इज्जत नहीं बेचता, असत्य से अपनी आत्मा का घृणित सौदा नहीं करता। वह तो अपने ध्येय के लिये अहर्निश उसी प्रकार जागरूक रहता है, जैसे चातक मेघों की ओर टकटकी बाँधे रहता है। ऐसा चरित्रवान पुरुष ही आफतों का पहाड़ टूट जाने पर भी कर्त्तव्य से मुँह नहीं मोड़ता, प्रतिकूल परिस्थितियों के सामने सिर नहीं झुकाता,

भय और प्रलोभनों से विचलित नहीं होता। सत्य की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देता है। भूखा-नंगा रहने पर भी अपनी आन पर आँच नहीं आने देता। राजा हरिश्चन्द्र ने राज्य छोड़ा, वैभव और ऐश्वर्य छोड़ा, चांडाल की चाकरी की परन्तु अपने सत्य-व्रत को नहीं छोड़ा। उनके चरित्र वल के समान देवताओं का राजा इन्द्र झुक गया, ऋषियों के राजा विश्वामित्र को हार माननी पड़ी। पिता शांतनु मल्लाह कन्या सत्यवती से विवाह कर सके, इसलिए भीष्म पितामह ने आजन्म ब्रह्मचर्य का व्रत लिया। राज्य का प्रलोभन उन्हें डिगा नहीं सका। जीवन के भोग-विलास उन्हें अपनी ओर खींच नहीं सके। यही कारण था कि भीष्मपितामह मृत्यु को भी अपने वश में कर सके। महात्मा गांधी अन्त तक अहिंसा और सत्य के व्रत पर अटल रहे। शान्ति और प्रेम के लिए उन्होंने अपना जीवन न्योछावर कर दिया। उन्हीं के पुण्य प्रताप से आज हम स्वतन्त्र हैं। हमारे लाखों देशभक्त, जिन्होंने अपनी सुख और आनन्द से भरी जिन्दगी को ठुकरा कर आजादी का व्रत लिया और जिन्होंने चट्टान वनकर अत्याचार और दमन के तूफानों का मुकावला किया। उनका चरित्र वल ही तो हमारे लिए आदर्श और प्रेरणा की अमूल्य धरोहर है।

ऐसे चरित्रवान पुरुषों की महिमा को हम किन शब्दों में वाँधें, वे समुद्र की तरह गम्भीर, पृथ्वी की तरह धैर्यवान, सूर्य की तरह तेजवान, चन्द्रमा की तरह शीतल, फूल की तरह कोमल और वज्र की तरह कठोर होते हैं। आपत्तियों के समय भी वे अपना धीरज नहीं खोते, अन्धकार के क्षणों में भी वे सूरज की तरह चमकते हैं। दूसरों के दुख को देखकर करुणा और दया से वे मोम की तरह पिघल उठते हैं, परन्तु असत्य और अधर्म के विनाश के लिए वे पत्थर और लोहे से भी अधिक दृढ़ होते हैं। वे उन सरकंडों की भाँति नहीं होते जो हवा के झोंके आए और नीचे झुक गए, वे उस विशाल वट वृक्ष की तरह होते हैं जिसका प्रचंड वायु के थपेड़े भी कुछ नहीं विगाड़ सकते। वे उन मिट्टी के कगारों की भाँति नहीं होते, जो लहरों के प्रवाह में वह

जाया करते हैं, परन्तु वे उन चट्टानों की तरह होते है, जो चट्टानें लहरों के भी रुख को वदल दिया करती हैं।

ये चरित्रवान पुरुष न होते तो इस धरती पर मनुष्यता न होती, धर्म और सत्य नहीं होता। प्रेम और करुणा नहीं होती। त्याग और परोपकार नहीं होता। जव-जव संसार में असत्य और अधर्म का वोल-वाला हुआ, अत्याचार और अनाचार वढ़े, दुनिया सच्ची राह भूलकर जव अन्धकार में भटकने लगी, तव चरित्रवान पुरुष ही महावीर, बुद्ध, गांधी और ईसा का रूप धर कर इस संसार में अवतरित हुए। उन्होंने संसार को सद्मार्ग वतलाया। मानव-धर्म का सच्चा उपदेश दिया। अपना जीवन मानवता के कल्याण में अर्पित कर दिया। उन्होंने जो कुछ किया, अपने लिए नहीं वरन् संसार के लिये किया।

ऐसे चरित्रवान पुरुष जो कुछ कहते हैं, उसे करते भी हैं। वे कोरे उपदेश देना ही नहीं जानते, उन पर अमल करना भी जानते हैं। मन, वचन, कर्म, से वे विलकुल शुद्ध होते हैं। उनकी कथनी और करनी में तनिक भी अन्तर नहीं होता। वे परोपदेशक नहीं, आत्मोपदेशक होते हैं। वे पहले अपने चरित्र को शुद्ध वनाते हैं, तव दूसरों को उपदेश देने की वात करते हैं। वे उन ढोंगी और पाखंडियों में से नहीं होते, जो कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं। ऊपर से बड़े शुद्ध और पवित्र वनते हैं परन्तु उनका व्यक्तिगत आचरण वड़ा दूषित और मैला होता है। ऊपर से सेवा परोपकार, त्याग की लम्वी-चौड़ी वातें सोचते हैं, परन्तु मन में सदा दूसरों की बुराई, अहित और नुकसान की वातें सोचते हैं। ऐसे लोग दुनिया की आँखों में सदा धूल झोंकते रहते हैं। दुनिया को ठगना ही उनका धर्म होता है। उनका जीवन झूठ, फरेव, दगावाजी से भरा रहता है। माना कि उनके पास ज्ञान है, विवेक और पांडित्य है, पर चरित्र विना तो यह सव झूठा है, ढोंग और पाखंड है। दुनिया को मूर्ख वनाने और अपना उल्लू सीधा करने की कला है।

पर चरित्रवान पुरुष अपने ज्ञान और पांडित्य को मानव कल्याण के लिए उपयोग में लाते हैं। वे जो कुछ करते हैं, निस्वार्थ भाव से करते

हैं। स्वार्थ में अन्धे होकर अपना विवेक नहीं खोते। अपने वे हित के लिए दूसरों के हित का बलिदान नहीं करते, वरन् दूसरों के हित के लिए अपने हित का बलिदान कर देते हैं। वे उन लोगों में से नहीं हैं, जो रात-दिन अपनी ही संकीर्ण और संकुचित दुनिया में बसे रहें। ऐसे ही लोग मानवता के सच्चे पुजारी होते हैं, जनता के सच्चे सेवक होते हैं। वे नाम के लिए सेवा नहीं करते, प्रसिद्धि के लिए सेवा नहीं करते, अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए सेवा नहीं करते, आदर और सत्कार पाने के लिए सेवा नहीं करते, सेवा का ढिंढोरा पीटकर सेवा नहीं करते, वरन् वे अपना कर्त्तव्य समझ कर सेवा करते हैं, मौन होकर सेवा करते हैं, ईमानदारी और सचाई के साथ सेवा करते हैं, त्याग की भावना लेकर सेवा करते हैं, हृदय और आत्मा का सच्चा सुख समझ कर सेवा करते हैं।

इसीलिए मानव कल्याण की सच्ची कामना तुम्हारे हृदय में है, जीवन को सार्थक बनाने की महत्त्वाकांक्षा तुम्हारे पास है, पांडित्य और विवेक का सच्चा उपयोग तुम्हारा उद्देश्य है तो पहले चरित्रवान बनो, अपने चरित्र को ऊँचा उठाओ। अपने हृदय में क्षमा, त्याग, दया, सेवा, शील, कर्त्तव्य-परायणता जैसे उदात्त आदर्शों का स्वस्थ प्रकाश भरो, तुम्हारा महान् लक्ष्य अवश्य पूरा होगा। भय की भावना को जीतो, स्वार्थ भाव की प्रवृत्तियों को वश में करो, त्यागी और परोपकारी बनो, उदार और विशाल हृदय वाले बनो। मर्यादा-पुरुषोत्तम राम का जीवन तुम्हारे सामने है। राम को पुरुषों में श्रेष्ठ क्यों कहा गया? क्योंकि उन्होंने जीवन भर अपने चरित्र को ऊँचा उठाए रखा। बचपन में ही उन्होंने विश्वामित्र के साथ जाकर निर्भीकता-पूर्वक राक्षसों का विनाश किया और मुनियों, तपस्वियों की रक्षा की। पिता के कहने पर राजपाट त्यागकर चौदह वर्ष तक वन में वास किया। उन्होंने पिता की आज्ञा का उल्लंघन कर राजपाट के लिए लड़ाई-झगड़ा नहीं किया। वन में सूपर्णखा ने अपने रूप से उन्हें लुभाना चाहा परन्तु राम ने अपना चरित्र नहीं डिगने दिया। उधर रावण को देखो।

के विकास में वास्तव में सत्संगति का बड़ा हाथ रहता है। क्योंकि हीन मनुष्यों की संगति से बुद्धि हीन हो जाती है, समान मनुष्यों की संगति से समान और उत्तम मनुष्यों के संग से बुद्धि उत्तम बन जाती है। भर्तृहरि के नीति-श्लोक का अर्थ है कि, "गरम लोहे पर पड़ने से जल की बूंद का नाम भी नहीं रहता, वही कमल के पत्ते पर पड़ने से मोती सी हो जाती हैं. और वही स्वाँति नक्षत्र में पड़ने से मोती हो जाती है।" अधम, मध्यम और उत्तम गुण प्रायः संगति से ही आते हैं। इसलिए अपने सद्गुणों के विकास के लिए, अपने विचारों और आचरणों को पवित्र रखने के लिए, यह आवश्यक है कि हम साध और सज्जन पुरुषों की संगति करें। जिस प्रकार गुलाब के फूल की महक आस-पास के वातावरण को भी सुरभिमय बना देती है, उसी प्रकार महान् आत्माओं का संसर्ग अपने स्पर्श से पारस पत्थर के समान हमारे लोहे की भाँति जीवन को भी स्वर्णमय बना सकता है।

सत्संगति के लिए आवश्यक है आप कुसंगति के जाल से सदैव दूर रहें। यह कुसंगति का जाल शैतान का जाल है और जो एक बार इस जाल में फँस गया वह फिर इस जाल से बर्बाद होकर ही निकलता है। रामायण में लिखा है कि नरक बास अच्छा, पर ईश्वर दुष्टों की संगति न दे। कबीर ने कितना सत्य कहा—

कबिरा सङ्गति साधु की, हरै और की व्याधि।
खोटी सङ्गति क्रूर की, आठों पहर उपाधि॥

इसलिए अच्छे मनुष्यों का संसर्ग करो। बुराई से बचना चाहते हो तो बुरे लोगों का साथ छोड़ो। बुरे लोगों के बीच में बैठकर चरित्र-निर्माण की आशा करना वैसी ही मूर्खता है जैसे सर्प से अमृत की आशा करना, कौए से मीठे वचनों की आशा करना। कहा भी तो है, "काजर की कोठरी में कैसो हू सयानो जाय, एक लीक काजर की लागि है पै लागि है।" इसलिए अपने चरित्र के दामन को बेदाग और स्वच्छ रखना चाहते हो तो बुराइयों की कोठरी में प्रवेश मत करो, क्योंकि बुरे लोगों का साथ करोगे तो तुम भी बुरे बन जाओगे। महात्मा गांधी

ने अपने वचपन में अपने एक मित्र को जो मांस-भक्षण करता था, सुधारने की नीयत से उसका साथ दिया। अपने उस मित्र को सुधारने की बजाय गांधीजी खुद मांस-भक्षी वन गए और इसके लिए चोरी भी करनी पड़ी है। आशा है गांधीजी के वचपन का यह अनुभव तुम्हारे काम आयेगा।

यह तो हुई सत्संगति की वात। आपके चरित्र-निर्माण से एक ओर वात सहायक वन सकती है, और वह है—सत्साहित्य का अध्ययन। जिस प्रकार शरीर की पुष्टि के लिए स्वास्थ्यप्रद भोजन आवश्यक है उसी प्रकार मस्तिष्क को वलवान वनाने के लिए सत्साहित्य के अध्ययन की आवश्यकता है। परन्तु स्मरण रखिए, जिस प्रकार विकृत भोजन से शरीर रोगी वन जाता है, उसी प्रकार विकृत साहित्य के अध्ययन से मस्तिष्क रोगी वन जाता है। यह निश्चय है कि यदि आप विचारवान लेखकों की श्रेष्ठ कला-कृतियों का रसास्वादन करेंगे तो आपको अपने जीवन को ऊँचा उठाने की प्रेरणा मिलेगी। आपके हृदय में शुभ संकल्प जन्म लेंगे, आप भले कामों में प्रवृत्त होंगे। इसलिए कहता हूँ अच्छा वनाना चाहते हो तो सुन्दर साहित्य की पुनीत मंदाकिनी में डुवकी लगाइए, आपकी समस्त बुराइयाँ, आपके हृदय का सारा मैल विलकुल गल जाएगा। भूलकर भी गन्दे उपन्यास और विकृत रोमांस की जहरीली पुस्तकें मत पढ़ो। यह चटपटा मनोरंजन आपका सर्वनाश कर देगा। एक वार यदि आपको ऐसे गन्दे साहित्य को पढ़ने की लत लग गई तो समझ लीजिए धीरे-धीरे आपका जीवन विनाश की ओर बढ़ रहा है, आपका चरित्र नीचे गिर रहा है।

आपको चरित्रवान बनना है, इसलिए व्यक्तियों का ही सामूहिक चरित्र राष्ट्रीय चरित्र को जन्म देता है। यदि किसी देश के नागरिक ईमानदार और कर्त्तव्य-प्रिय होंगे, सच्चे और उदार होंगे तो उस राष्ट्र का चरित्र भी बहुत ऊँचा होगा। चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन का वर्णन करते हुए मैगस्थनीज लिखता है कि उस समय राज्य में कहीं चोरी नहीं होती थी। लोग ईमानदार और विश्वास-प्रिय थे, वे अपने

घरों में ताले नहीं लगाते थे। यह इस बात का साक्षी है कि पुरातन काल में हमारे राष्ट्र का चरित्र कितना महान् था। यहाँ के रहने वाले कितने महान् थे। पर आज तो बात बिलकुल ही उल्टी है। हमारा सारा वातावरण आज छल, फरेब और झूठ से भरा हुआ है। आज मनुष्य को मनुष्य पर विश्वास नहीं और प्रत्येक आदमी एक-दूसरे की आँखों में धूल झोंककर अपना उल्लू सीधा करने की फिराक में है। कहीं भी जाइए—आपको प्रतिक्षण झूठ, संशय और अविश्वास का सामना करना पड़ेगा। रिश्वत और चोर बाजारी, छल और बेईमानी आज व्यवहार-कुशलता के प्रमुख अंग माने जाते हैं। जो जितना झूठ बोलकर, छल से और फरेब के साधनों से अपना स्वार्थ पूरा कर सके, वह उतना ही अधिक बुद्धिमान माना जाता है। बेईमानी आज हमारे जीवन का नीति-शास्त्र बन गई है। हमारे राष्ट्रीय चरित्र का कैसा पतन है? जिस देश ने सबसे पहले संसार में ज्ञान और सभ्यता का, धर्म और सत्य का प्रकाश फैलाया था, आज वही असत्य, अधर्म के कुत्सित रूप को अपना रहा है। यह सत्य है कि हम स्वतन्त्र हो गए, परन्तु जब तक हम अपने राष्ट्रीय चरित्र को समृद्धिवान न बना सके, तब तक क्या स्वतन्त्र होना सार्थक है? जब चरित्र ही नहीं, तब राष्ट्र का यह मान-प्रतिष्ठा सब झूठी है, कोरा पाखण्ड है। राष्ट्र का सच्चा निर्माण सच्ची प्रगति तभी हो सकेगी, जबकि हमारे देशवासी चरित्रवान बनें। यह चरित्र-बल ही है जो उनके जीवन की, उसके समाज की, उसके राष्ट्र की और समस्त भू-मण्डल की भावभूमि को दृढ़ और उज्ज्वल रूप प्रदान करेगा।

उपसंहार

असत् से सत् की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमृत की ओर आगे बढ़ने के लिए आपने अपना मार्ग पहचान लिया। आप उन जीवन-शक्तियों से परिचित बन गए, जो आपको मंजिल तक पहुँचाने में सहायक बनेंगी। परन्तु मार्ग को केवल पहचानने से ही तो यात्रा पूरी नहीं होती। साधनों और मंजिल तक पहुँचाने की शक्तियों के ज्ञान से ही तो मंजिल तक नहीं पहुँचा जा सकता। जब तक आप मार्ग पर चलेंगे नहीं, जो कुछ आपने अब तक ग्रहण किया है, जीवन को ऊँचा उठाने वाली जिन शक्तियों और साधनों का ज्ञान प्राप्त किया है, उनका उपयोग नहीं करेंगे, उन्हें अमल में नहीं लायेंगे तब तक आप उसी स्थान पर खड़े रहेंगे, जहाँ आप पहले थे। उससे तिल भर भी आगे आप नहीं बढ़ सकेंगे। शेख सादी ने कहा है, "जो विवेक के नियमों को तो सीख लेता है, परन्तु जीवन में उन्हें उतारता नहीं, वह ऐसे आदमी की तरह है जिसने अपने खेतों में मेहनत तो की मगर बीज नहीं डाला।" महात्मा बुद्ध के ये शब्द कितने तथ्यपूर्ण हैं, "जो बहुत से धर्मशास्त्र पढ़ता है, लेकिन उनके अनुसार अमल नहीं करता वह उस ग्वाले के समान है जो दूसरों की गायों को गिनता रहता है।" बात वास्तव में सच है कि शास्त्र-ज्ञान होने पर भी लोग मूर्ख बने रहते हैं। विद्वान् तो वह है जो क्रियावान है। दवा के खाने से रोग जाता है, दवा का नाम लेने से नहीं।

इसलिए सच्चा अध्ययन वही है, सच्चा पांडित्य और विवेक वही है जो क्रियाशील हो। क्रियाहीन ज्ञान तो कुएँ के उस गन्दे जल की तरह है, जिसका उपयोग नहीं किया जाता। अतः जीवन-निर्माण के लिए सबसे आवश्यक बात तो यह है कि जो कुछ सीखो, उसे जीवन में उतारो। इस पुस्तक के पिछले पृष्ठों पर जीवन-निर्माण की सामग्री संचित है। उसे तुमने पढ़ा और सीखा है। उस पर मनन और विचार करते हुए अब अपने जीवन-निर्माण की इस सामग्री का उपयोग करो। जो कुछ तुमने सीखा है, उसके अनुसार कार्य करो। तुम्हारा ज्ञान और तुम्हारी क्रिया भिन्न वस्तुएँ न रहें, वे मिलकर एक हो जायँ। ज्ञान और कर्म का यह समन्वय ही तुम्हें तुम्हारे आदर्श तक ले जा सकता है।

महाभारत की एक कथा है। गुरु द्रोणाचार्य पाण्डवों और कौरवों के शिक्षक थे। सबसे पहले दिन द्रोणाचार्य ने अपने सब शिष्यों को पाठ पढ़ाया—"कभी क्रोध मत करो, सदा सच बोलो।" उन्होंने अपने सभी शिष्यों से अगले दिन इस पाठ को याद कर लाने के लिए कहा। 'कभी क्रोध मत करो, सदा सच बोलो"—इन चार-छः शब्दों को याद कर लेने में भला कितना समय लगता? सब बालकों ने बहुत थोड़े समय में याद कर लिया।

दूसरे दिन द्रोणाचार्य ने सबसे पहला पाठ पूछा। सबने बड़ी सरलता से इसे सुना दिया। परन्तु जब युधिष्ठिर की बारी आई और द्रोणाचार्य ने उससे पूछा तो युधिष्ठिर ने सिर झुकाकर बड़ी नम्रता से उत्तर दिया, "नहीं गुरुजी, अभी मुझसे पाठ याद नहीं हुआ।" दुर्योधन आदि सब कौरव खिलखिला कर हँस पड़े। अरे, यह युधिष्ठिर वड़ा मूर्ख है, इसको इतना छोटा-सा पाठ याद नहीं हुआ। युधिष्ठिर चुप रहे, उन्होंने कुछ भी नहीं कहा। द्रोणाचार्य ने आज किसी बालक को दूसरा पाठ नहीं पढ़ाया और युधिष्ठिर को पहला पाठ अगले दिन याद कर लाने को कहा।

दूसरे दिन भी युधिष्ठिर पाठ याद न कर सके। कौरवों ने उन्हें खूब चिढ़ाया। द्रोणाचार्य ने अगला पाठ अन्य बालकों को पढ़ा दिया,

परन्तु युधिष्ठिर को पहला पाठ याद कर लाने को कहा। तीसरे दिन भी युधिष्ठिर की यह हालत रही। दूसरे बालक कई पाठ अभी पढ़ पढ़ चुके थे परन्तु युधिष्ठिर को अभी पहला पाठ याद नहीं था। पाँचवें दिन भी युधिष्ठिर को पहला पाठ याद नहीं हुआ, तब तो द्रोणाचार्य बहुत झुँझलाए। उन्होंने बेंत उठाकर युधिष्ठिर की पीठ में लगाए और युधिष्ठिर को सब बालकों के सामने लज्जित होना पड़ा। परन्तु युधिष्ठिर के मुख पर तनिक भी क्रोध की छाया नहीं थी, वे शान्त रहे। छठवें दिन जब उनसे पहला पाठ सुनाने को कहा गया, तब युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—"इस पाठ की पहली पंक्ति "कभी क्रोध मत करो" मुझे याद हो गई क्योंकि कल आपने मुझे मारा था तब मुझे तनिक भी क्रोध नहीं हुआ था। अब मुझे पूरा विश्वास हो गया कि मैं कभी क्रोध नहीं करूँगा। लेकिन गुरुदेव! अभी मुझे इस पाठ की दूसरी पंक्ति अच्छी तरह याद नहीं है, क्योंकि मुझे अभी तक सन्देह है कि मैं जीवन भर सच बोल सकूँगा या नहीं। परन्तु गुरुदेव! शीघ्र ही सच बोलने की आदत डालकर इस पाठ की दूसरी पंक्ति 'सदा सच बोलो'—को याद कर लाऊँगा।"

इस उत्तर को सुनकर द्रोणाचार्य खुशी से गद्‌गद् हो गए। उन्होंने युधिष्ठिर को छाती से लगा लिया। द्रोणाचार्य ने अन्य बालकों से कहा, "देखो, तुम लोगों ने केवल पाठ के शब्दों को ही याद किया था, ऐसे याद करने से जीवन को कुछ भी लाभ नहीं नहीं होता। परन्तु युधिष्ठिर ने इस पाठ के सच्चे अर्थ को सीखा है। उसका याद करना सच्चा है, क्योंकि उसने अपनी शिक्षा को जीवन में उतारा है। उसका याद करना जीवन को सच्ची उन्नति की राह पर ले जाना है।"

जो बात द्रोणाचार्य ने अपने शिष्यों से कही है, वही बात आपके लिए अक्षरश: सत्य है। केवल पाठ याद करने से कुछ लाभ नहीं, जब तक उसे अपने जीवन में उतारा न जाय। यह तो उस कृपण के धन के समान है जो विशाल राशि में होता हुआ भी कौड़ियों के मूल्य से भी गया बीता है। इसलिए आप भी युधिष्ठिर की भाँति अपना पाठ

याद करिए। कभी क्रोध मत करिए, सदा सच बोलिए, इस पंक्ति व
पढ़कर ही मत रह जाइये। वरन् क्रोध न करने की और सदा स
बोलने की आदत भी जीवन में डालिए। जब तक आपके शुभ विचा
कार्य रूप में परिणत नहीं होंगे, जब तक आपका ज्ञान क्रियावा
नहीं बनेगा, तब-तब आपका लक्ष्य आप से दूर रहेगा। क्योंकि बोलन
और विचार करना नहीं, वरन् चलना आपको आपकी मंजिल तव
पहुँचायेगा।

इसलिए जीवन-निर्माण की ओर गतिशील बनाने वाले हे साधक! उठ, जीवन का ध्येय तुझे पुकार रहा है, साधना की राह तेरे सामने है, विजय के शस्त्र तेरे हाथ में हैं, निर्भीक होकर अपना कदम आगे बढ़ा।